मेरी बिटिया

अकादेमी के अन्य हिन्दी प्रकाशन

(मूल भाषाओं के नाम कोष्ठकों में दिये हैं)

१. भारतीय कविता : १९५३	(भारत की चौदह भाषाओं की कविताओं का लिप्यन्तर और अनुवाद)	५.००
२. केरलसिंह (मलयालम),	का० मा० पणिक्कर	३.००
३. भगवान् बुद्ध (मराठी),	धर्मानन्द कोसम्बी	५.००
४. मिट्टी का पुतला (उड़िया),	कालिन्दीचरण पाणिग्राही	२.००
५. कांदीद् (फ्रेंच),	वाल्तेयर	२.००
६. दो सेर धान (मलयालम),	तकषी शिवशंकर पिल्लै	२.००
७. गेंजी की कहानी (जापानी),	मुरासाकी शिकाबू	४.५०
८. आरण्यक (बंगला),	विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय	४.००
९. आरोग्य निकेतन (बंगला),	ताराशंकर वंद्योपाध्याय	४.००
१०. अमृत संतान (उड़िया),	गोपीनाथ महान्ती	१२.००
११. आदमखोर (पंजाबी),	नानकसिंह	५.००
१२. वैदिक संस्कृति का विकास (मराठी),	लक्ष्मण शास्त्री जोशी	५.५०
१३. क्या यही सभ्यता है? (बंगला),	माइकेल मधुसूदन दत्त	१.५०
१४. नारायणराव (तेलुगु),	अडवि बापिराजु	६.००
१५. आज का भारतीय साहित्य	(भारत की १६ भाषाओं के साहित्य का परिचय)	७.००
१६. जीवी (गुजराती),	पन्नालाल पटेल	४.५०
१७. भग्न-मूर्ति (मराठी),	आ० रा० देशपांडे 'अनिल'	१.००
१८. मिरातुल-अरूस (उर्दू),	नजीर अहमद	५.००
१९. एकोत्तर शती (बंगला)	(रवीन्द्र ठाकुर की १०१ कविताओं का हिन्दी लिप्यन्तर) सामान्य संस्करण ८.००, विशेष संस्करण	१०.००
२०. चिलिका (उड़िया),	राधानाथ राय	१.५०
२१. छै बीघा जमीन (उड़िया),	फकीरमोहन सेनापति	३.००

मीरी बिटिया

(असमिया भाषा का एक उपन्यास)

मूल लेखक
रजनीकांत बरदलै

अनुवादक
युगजीत नवलपुरी

साहित्य अकादेमी की ओर से
रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स दिल्ली

Miri Bitia (Novel) by Rajanikant Bordoloi
Translated from Assamese by Yugajeet Nawalpuri
Sahitya Akademi, New Delhi, 1959. Rs. 2·00

साहित्य अकादेमी नई दिल्ली की ओर से
रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स दिल्ली द्वारा प्रकाशित

प्रथम हिन्दी-संस्करण
जून, १९५९

मूल्य : दो रुपये

निरंजन स्वरूप सक्सैना द्वारा
डिलाइट प्रेस, चूड़ीवालान, दिल्ली में मुद्रित

भूमिका

ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में रजनीकांत बरदलै ने असमिया साहित्य में अपने लिए एक विशेष स्थान बना लिया है। उनके पूर्वज पिछली शती के आरम्भ-काल में, 'मान' (बर्मियों) के आक्रमणों तथा 'कोच'-शासन के युग में पूर्व असम से कामरूप में आ बसे थे। शायद इसी कारण 'मान'-युग के अन्धकार की गहरी छाया उनके कई उपन्यासों पर पड़ी है। रजनीकान्त का जन्म गुवाहाटी (गोहाटी) में सन् १८६८ ईसवी में हुआ था। एंट्रेंस उन्होंने वहीं से पास किया। फिर कलकत्ता के मेट्रोपोलिटन इंस्टिट्यूट (आजकल के विद्यासागर कालेज) से प्रथम श्रेणी में एफ़०ए० पास किया। सन् १८८९ ईसवी में कलकत्ता के सिटी कालेज से बी०ए० की डिग्री लेकर वह असम लौट आए और गुवाहाटी के डिप्टी कमिश्नर के दफ़्तर में किरानी के रूप में अपने जीवन का आरम्भ किया। इसके बाद सन् १८९१ ईसवी में उन्हें सब-डिप्टी कलक्टर का, और सन् १९०१ ईसवी में अतिरिक्त सहकारी कमिश्नर का काम मिला। सन् १९१८ ईसवी में उन्होंने सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लिया। इस बीच सन् १९०८ में कुछ दिन तक वह नौगाँव के डिप्टी कमिश्नर भी रह चुके थे। नौकरी के सिलसिले में जहाँ-तहाँ भटकते रहने के कारण उन्होंने जीवन का बहुरंगी अनुभव प्राप्त कर लिया था। साथ ही अपने पुरखों की स्मृति तथा छात्र-जीवन में सर वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों के अध्ययन से

अनुप्रेरित होकर बरदलै उपन्यास-रचना की ओर अग्रसर हुए। इसके अतिरिक्त उन दिनों के साहित्यकारों के देशात्म-बोध तथा अपनेनिज के सहज मानवता-बोध से भी उन्हें देश के प्राचीन इतिहास का पता लगाने एवं देश की साधारण जनता और जन-जातियों के जीवन को सहानुभूति के साथ साहित्य में रूपायित करने का प्रोत्साहन मिला। उनका प्रथम उपन्यास 'मीरी जीयरी' ---मीरी बिटिया---(सन् १८६५ ईसवी) 'मीरी' अथवा मिश्मिङ नामक आदिम जाति के जीवन पर आधारित है। बरपेटा रहते समय बरदलै शंकरदेव द्वारा प्रचारित वैष्णव-धर्म के संदेश के प्रति आकृष्ट हुए थे। उसीको पटभूमि बनाकर उन्होंने कामरूप के पुराने इतिहास के एक अध्याय-विशेष पर आधारित उपन्यास 'मनोमती' (सन् १९०० ईसवी) को प्रकाशित किया। कामरूप के इतिहास के एक और अध्याय, आहोम-राज-सत्ता के विरुद्ध हरदत्त एवं बीरदत्त नाम के दो विद्रोही वीरों की कथा ने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया। उस विद्रोह की भौगोलिक सीमाओं के भीतर राज-कर्मचारी के रूप में भ्रमण करने के अवसर उन्हें पर्याप्त मिले थे। इन्हीं भ्रमणों के दौरान में उन्होंने 'दंदुया-द्रोह' (सन् १९०९ ईसवी) नामक उपन्यास की रचना की। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि ठीक इसी विषय पर 'पदुमकुँवरी' नामक उपन्यास की रचना श्री लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ पहले ही कर चुके थे। इसके बाद बरदलै ने अपने पूर्वजों के जीवन से संलग्न युग, 'मान'-युग के विषय को अपनाया। उनके परवर्ती उपन्यासों में उस समय की विभीषिकामयी घटनाओं का प्रतिफलन बारंबार मिलता है। 'रंगीली' (सन् १९२५ ईसवी), 'निर्मल भक्त' (सन् १९२६ ईसवी), 'ताम्रेश्वरीर मंदिर' (सन् १९२६) और 'रहदै लिगिरि' (सन् १९२६ ईसवी) उनके ऐसे उपन्यास हैं, जिनसे उस युग का एक चित्र इतिहास पढ़े बिना ही पा लेना सम्भव है। बरदलै ने 'मान'-आक्रमणों के पूर्व के असम-इतिहास की एक उल्लेखनीय घटना, मायामरिया वैष्णव-सम्प्रदाय के शिष्यों के विद्रोह को आधार बनाकर 'राधा-रुक्मिणी' नामक उपन्यास लिखा

तथा मणिपुरियों के किवदंती-मूलक इतिहास, 'खोबा ओ थोइबी' की कहानी को उपन्यास का रूप दिया। इसीसे इस बात का पता चल जाता है कि उनकी इतिहास-प्रीति और मानवीय सहानुभूति कितनी उदार थी।

यद्यपि बरदलै के ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास के घटना-सूत्रों में आबद्ध हैं, तथापि इस बात में संदेह की कोई गंजाइश नहीं कि उनकी सृष्टि कला-कुशल बन पड़ी है। हाँ उनके प्रथम उपन्यास 'मीरी जीयरी' (मीरी बिटिया) में इतिहास का यह बंधन नहीं है। इतना अवश्य है कि इसमें एक और ही अनुसंधित्सा ने उनकी नींद हराम कर रखी थी। इस बीच असम इतिहास के लेखक सर एडवर्ड गेट के अनुरोध पर उन्होंने मीरी धर्म-कर्म तथा रीति-नीति के विषय में कुछ शोध-कार्य भी किया था। उन्होंने स्वीकार किया है कि गेट महाशय द्वारा प्रणोदित संकल्प ने ही उनसे 'मीरी बिटिया' की रचना करवाई। यही कारण है कि यद्यपि 'मीरी बिटिया' का उपन्यासकार ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटक नहीं है, तथापि छोटा-मोटा नृतत्त्व शास्त्री तथा समाज-शास्त्री तो है ही। उनकी समाज-शास्त्रीय नोट-बुक से ही 'मीरी बिटिया' का जन्म हुआ। यह उपन्यास सन् १९९४ ईसवी में एक नौका यात्रा के दौरान में लिखा गया था। उन्होंने अपनी जीवन-स्मृति में लिखा है :

"दफ्तर की पेटी से कागज-क़लम निकालकर और तकिये को ही मेज बनाकर लिखना शुरू कर दिया। सोच रहा था, क्या लिखूँ। नाव की यात्रा कर रहा था, इसीलिए शायद स्वभावत: पहले मीरी लोगों की नौका-यात्रा की बात याद आई। साथ ही उत्तर लखीमपुर की दृश्यावली, सोवनशिरी नदी, मीरी जनता के धर्म-कार्य, उनकी रीति-नीति, शादी-ब्याह, रस्म-रिवाज, सामाजिक आचार, बीच-बीच में कचहरी के अंदर आ पहुँचने वाले मीरी युवक-युवतियों के मामले-मुक़द्दमे आदि याद आने लगे। बिहू-गीतों की सुध आई। क़लम उठा ली। आप-ही-आप न जाने कौन-सी 'इन्सपिरेशन' (प्रेरणा) मिली

कि उसी नौका में, दो दिनों में ही, 'मीरी बिटिया' उपन्यास लिख डाला।"

इन स्मृतियों ने इस उपन्यास में लेखक को सदा अभिभूत रखा है। इसका कथा-भाग और इसके चरित्र मीरी लोगों की तरह ही सरल हैं। इस उपन्यास में कला-कौशली जटिलता नहीं है। मीरी जीवन का 'ईडिलिक' जानपद गाथाओं-जैसा रमणीक सौन्दर्य ही इसका प्रधान आकर्षण है।

उपन्यास-जैसी बृहत् कलेवर-वस्तु का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना कोई सहज काम नहीं होता। और जब मूल उपन्यास के सामाजिक परिवेश उसका स्थानीय सौन्दर्य तथा उसकी परिस्थिति की तीव्रता भाषा पर ही निर्भर हो, तब तो यह काम और भी अधिक कठिन हो जाता है। प्रस्तुत अनुवाद में मूल ग्रंथ के सौंदर्य और तीव्रता को कितनी दूर तक पुनर्जीवन प्राप्त हो सका है, यह विचारणीय है। इस पुस्तक को हिन्दी में अनूदित करके उसके रस-ग्राहकों की संख्या बढ़ाने तथा एक जनजाति के जीवन के इस छोटे-से चित्र को हिन्दी-भाषी जनता के समक्ष रखने के लिए साहित्य अकादेमी धन्यवादार्ह है।

गुवाहाटी विश्वविद्यालय,
गुवाहाटी (असम)

बिरिंचिकुमार बरुआ

समर्पण

प्रिय विद्याधर,

भाई ! कलकत्ता में पढ़ाई के दिनों में लगातार चार बरस तक और लखीमपुर में नौकरी के जीवन में दो बरस तक, तुम्हारे साथ सुख से जो दिन बिताये हैं, उन्हें भुला नहीं सकता। तुम्हारे अमृत के बोल, मेरे प्रति अनुराग, मेरे दुःख में दुःख और शोक में शोक मानने आदि के तुम्हारे गुण आज भी मुझे सदा याद आते रहते हैं। तुम्हारे-जैसा अकृत्रिम अनुराग मैंने इस संसार में बहुत थोड़े-से ही बंधु-बांधवों से पाया है। यह मैं कुछ भी सोच न सका कि तुम्हें क्या दूँ और क्या कहकर तुम्हें सुख पहुँचाऊँ। इसीलिए भाई ! अपनी इस भोली-भाली 'मीरी बिटिया' को तुम्हारे हाथों में सौंपता हूँ। तुम इसकी बातों को ध्यान से सुनना ! और कभी-कभी इसे याद करके आँखों के दो बूँद आँसू ढाल दिया करना और अपने सरल चित्त से इसकी सद्गति के लिए प्रार्थना भी करना !

मेरी भोली मीरा बिटिया ने आजकल के नये तर्ज़ के बँगला गाने गाना नहीं सीखा। दुखी होने पर वह टूटी-फूटी

असमिया बोली में ही मामूली से बिहू-नाम[1] गा लेना जानती है। 'नराछिगा'–बिहू[2] आने पर वह "दादाम् बनेङ बनेङ दादिङ"[3] आदि 'नाम' ही गाती है। सो भाई, इसमें कुछेक 'बिहू-नाम' भी दे दिये हैं; यह जानकर कि 'बिहू' नामों के कलंकित होने पर भी तुम इन्हें सुनना पसन्द करोगे। तुम मुझ पर कुरुचि का दोष मत लगाना! भले घरों की बहू-रानियाँ ये ओछे 'बिहू-नाम' नहीं गातीं और गाती भी होतीं तो मेरे लिए और कोई चारा नहीं था। इति।

बरपेटा, तुम्हारा स्नेही
८–५–'१८९० श्री रजा

---

१. 'बिहू'=संक्रांति। (असमिया जनता मेष, तुला और मकर संक्रांतियों के दिन, अर्थात् बैसाख, कार्तिक और माघ में खूब धूम-धाम से उत्सव करती है और आनन्द मनाती है।) नाम=पुण्य पर्व के गीत। 'बिहू-नाम'='बिहू' के गाने। —अनु०

२. कातिक-बिहू। विस्तृत विवरण तीसरे अध्याय में है। —अनु०

३. पच्चीसवें पृष्ठ पर देखिये। —अनु०

१

नदिया के तीर

इस असम देश के लखीमपुर जिले में सोवनशिरी नाम की एक नदी है। यह नदी असम के उत्तर में स्थित मीरी और डफला पर्वतमाला से निकलकर उत्तर लखीमपुर के बीच मुड़ती हुई, माजुली (नदी-टापू) की खेरकटिया नदी में जा मिलती है। खेरकटिया अब कोई अलग नदी नहीं रही। ब्रह्मपुत्र की एक शाखा-मात्र है। मुख्य ब्रह्मपुत्र से फूटकर सोवनशिरी में गिरती है। आज भी लखीमपुर और माजुली में साधारण श्रेणी के लोगों में कुछ ऐसा प्रवाद है कि ब्रह्मपुत्र बाबा ही आगे बढ़कर अपनी परम रूपवती सर्वगुण-विभूषिता भार्या सोवनशिरी को राह से ही आदर पूर्वक लिवा ले जाते हैं। जहाँ पर सोवनशिरी और खेरकटिया आपस में मिलती हैं, वहाँ से जो नदी बनती है उसका नाम लुइत है। लुइत लखीमपुर और माजुली के बीच से पश्चिम को मुड़ती हुई ब्रह्मपुत्र में जा गिरती है।

चौड़ाई में सोवनशिरी ब्रह्मपुत्र के पाँचवें भाग के लगभग होगी। ब्रह्मपुत्र के पानी से इसका पानी निर्मल है। जितना ही ऊपर की ओर को जाइये, इसका पानी उतना ही निर्मल मिलता जाता है। और भी ऊपर की ओर पानी इतना पारदर्शी है कि तला तक देखा जा सकता है। इस पानी में जगह-जगह थोड़ा-थोड़ा सोना मिला हुआ है। पहले सोवनशिरी असम की एक प्रधान सोना-वाही नदी थी। जगह-जगह सोवनशिरी के पानी में सोने के रेगु हैं। पर अब असमिया लोगों ने सोना धोना छोड़ दिया है। यह वृत्ति बड़ी ही कष्टकर है। लाभ कोई नहीं होता। भाग्य में बदा होने पर ही कोई महीने-भर रेत धोने पर चवन्ना-भर सोना निकल पाता है। पहले, राजा के दिनों में, धान-चावल के भाव बहुत सस्ते थे। चवन्नी-भर सोने में ही पूरे परिवार का महीने-भर का खाना-पीना चल जाता था। पर आजकल पाँच-छः रुपये-भर का धन न हो, तो एक आदमी के खाने-खरचे में भी टोटा पड़ जाता है। इसीलिए आज के असमिया लोगों ने लाचार होकर ऐसी वृत्ति से मुँह मोड़ लिया है। पर आज भी, अर्थात् इस दिखावे के जाते रहने पर भी कि सोवनशिरी माई दुखियारे असमिया लोगों को सोने का दान देती है, माई के और-और गुन पहले की भाँति ही ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं। यही कारण है कि उसके शीतल सुकोमल स्नेहल लाड़-प्यार से पलता असमिया मानव माई के बखान करने से आज भी बाज़ नहीं आता। माई के रूप-धन की भी कोई सीमा नहीं। एक-से-एक शानदार कितने ही वनों के बीच से वह मुड़ती चलती हैं। कितने ही गाँवों के बीच से गुजरती हुई वह तटवासी लोगों को अपनी शीतल बयार और निर्मल पानी देकर देह-मन से स्वस्थ रखती है।

माई का स्नेह असमिया लोगों से भी अधिक पहाड़ों से आनेवाले मीरी लोगों के ऊपर रहता है। स्वभाव से ही भोले-भाले मीरी

बच्चे और बच्चियाँ, पूरी मीरी जाति, माई को छोड़कर कभी भी रह नहीं सकती। पहाड़ों की ठंडी-ठंडी गोद से उतरकर आये हुए मीरी लोग[1] जब तक माई के पास न रहें, तब तक उनका काम ही नहीं चलता। 'चरण-पूजा'[2] में ये लोग अपने देह-प्राण जुड़ाने के लिए 'मुग्लीङ

---

१. इन मीरी लोगों में प्रवाद है कि पहले वे शदिया के ऊपर 'आबर' जाति के साथ रहते थे। क़बीलों-क़बीलों में मार-काट सदा ही लगी रहती थी। सो, वे मैदानों में उतर आए। आबरों ने पीछा तो किया, पर जंगली इलायची, कच्चू आदि के पौधों को अक्षुण्ण उपजते देखकर समझा कि मीरी बहुत दूर निकल गए होंगे। सो, वे लौट गए। तब से ये मीरी मैदानों में ही बसे हैं। इनके दो प्रधान क़बीले हैं, दस गाँवों का क़बीला और बारह गाँवों का क़बीला। बारह गाँव के क़बीले के अन्दर भी चुतीया, देलियाल आदि छोटे-छोटे क़बीले हैं। दस गाँवों के क़बीले में आयेङिया, मायेङिया, चायेङिया, दामुकियाल, शामूगुरिया आदि छोटे क़बीले हैं। ये ही मैदानी मीरी हैं। पहाड़ों पर अब भी नाना जातियों के मीरी हैं। उनके गाछी, घाँसी, सारोग, चिली आदि क़बीलों के नाम सुने गए हैं। आचार-व्यवहार, रहन-सहन, खान-पान, पूजा-पाठ आदि में ये मीरी प्रायः 'आँका' 'नगा' आदि जातियों-जैसे ही हैं। परन्तु हमारे मैदानी मीरी तो आजकल लगभग असमिया ही बन चुके हैं। उनकी अलग मीरी बोली तो जरूर है, पर वे सब-के-सब असमिया भी बोलते हैं। कपड़े-लत्ते भी असमिया लोगों-जैसे ही पहनते हैं। यहाँ तक कि उन्होंने हिन्दू धर्म भी अपना लिया है।

२. धन होने पर कोई भी मीरी यह पूजा कर सकता है। साल-दो साल या तीन-चार साल के बाद भी पूजा की जा सकती है। एक बार जो यह पूजा कर लेता है, वह सदा उसी नियत समय पर

मिरेमा'[1] की इस प्रकार स्तुति करते हैं :
"ताङ लेङ्छिनाक चिनेक ताङएकि राक बेचिनेक बेचि ताम कनेक बिदाक बंके, चिनके ताककने, टुकुइया आकिये, किमयका, आचारे बिबि मतैका"[2]

करता है। इसका उद्देश्य होता है कि परिवार में सभीका मंगल हो। इस पूजा में बादल, बिजली, चाँद, सूरज, सितारों, मिट्टी, पानी आदि सभी प्राकृत देवताओं को दारू, सूअर, मुर्गे आदि की भेंट चढ़ाई जाती है। कर्मकांड इसमें बहुत सारे होते हैं स्थानाभाव से विस्तृत वर्णन नहीं दिया जा सका। —लेखक

१. ये बिजली और बादल के देवता हैं। सोवनशिरी के पार बसे मीरी गाँवों में अक्सर बिजली गिरती है। इससे, और यों भी बिजली की कौंध से तथा मेघ के गरजने से डरकर स्वभाव से ही भोले ये मीरी बिजली और बादल को देवता समझते हैं। जीते सूअर को धो-पोंछकर थाली में पकड़ रखते हैं और उसके सिर पर चोट करके लहू निकालते हैं। यही लहू उक्त मंत्र के साथ'मुग्लोङ' और 'मिरेमा' के नाम पर निछावर किया जाता है। —लेखक

२. मंत्र। अर्थात् "(हे बिजली, हे बादल) हम तुम्हें एक पँचसाला, चार उजले खुरों वाला, सिंगैल, दँतैल सूअर दे रहे हैं। इसे खाकर तुम हमें सकुशल रखना ! हमें सिर-दर्द न हो, पेट-दर्द न हो। हमें जुड़ाये शीतल रखना !"

पँचसाला माने ठीक पाँच साल का ही हो, सो नहीं, बल्कि पँचसाला माने बड़ा-सा। दोसाला सूअर चढ़ाते समय भी कहते पँचसाला ही हैं। सूअर के दाँत तो होते हैं, पर सींग नहीं होते; सिंगैल गाय-बलि की ओर संकेत करता है। हिन्दू-संसर्ग से मैदानी मीरी लोग गाय-भैंस बलि चढ़ाना और खाना छोड़ चुके हैं, पर मंत्र नहीं बदला। सिर-दर्द आम रोग है। मीरी दारू खूब पीते हैं। पेट-दर्द से बहुत डरते-घबराते हैं। —लेखक

फिर भी जब तक सोवनशिरी माई की शीतल बयार न हो, तब तक जीना दूभर रहता है। सोवनशिरी का शीतल जल न पियें तो इन मीरी लोगों की प्यास ही न बुझे। सोवनशिरी माई की गोद में छोटी-छोटी नावों में चढ़कर मरम गरमा न लें, तो मीरी लोगों के मन पर रंग ही नहीं चढ़ता। इसीलिए मीरी जाति के अधिकतर लोग सोवनशिरी माई के ही तट पर बसते हैं। सोवनशिरी के दोनों किनारों पर जगह-जगह मीरी गाँव हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी है कि इस पार मीरी गाँव है, तो उस पार जंगल है। ऐसे ही जंगलों को काटकर मीरी खेत बनाते हैं।

ऐसे ही एक मीरी गाँव के पच्छिम की ओर 'आहू' धान[1] के दो खेत थे। ये दोनों खेत सोवनशिरी नदी के किनारे पर ही थे। दोनों खेतों में दो मचान थे। बस, कोई दस-बारह नल[2] की ही दूरी पर। उस समय उन दो में से एक मचान पर आठ-नौ साल की एक लड़की थी। दूसरे में एक तेरह-चौदह साल का लड़का था। दोनों के हाथ में बाँस की एक-एक झाँझरी[3] थी। बीच-बीच में धान में बया, टुनकी आदि नन्ही चिड़ियाँ पड़-पड़ जाती थीं। वह लड़का और लड़की दोनों ही झाँझरी बजा-बजाकर चिड़ियों को हुशका रहे थे।

कोई चार बजे की बेर हो चली। सूरज देवता धीरे-धीरे पच्छिम के आसमान में खिसकने लगे। धूप की किरणें सोविनशिरी नदी में पड़कर झिलमिला रही थीं। वह लड़का और वह लड़की दोनों अकेले-

---

१. जून-जुलाई में कटने वाला और बसंत में बोया जाने वाला 'गदर' या 'आशु' या 'असौजी' धान।—अनु०

२. नल=आठ हाथ (बारह फ़ुट)।

३. मूल 'तका'। यह एक विशेष प्रकार की झाँझरी होती है, जिसे बिहू गाने के साथ भी बजाते हैं।—अनु०

अकेले अपने-अपने खेतों में बैठे थे कि उधर जंगल की ओर से एक रीछ निकला। रीछ के निकलते ही दोनों के प्राण सूख गए। दोनों घबराकर भाग खड़े हुए। दौड़ते-दौड़ते वे कोई सात-आठ 'नल' ही गये होंगे कि दोनों ठोकर खाकर गिर पड़े। पर लड़का झट उठा और रीछ के पीछा करते होने के भय के बावजूद उसने फ़ौरन दौड़कर लड़की को उठाया और पूछा, "पानेइ, चोट तो नहीं लगी ?"

लड़के की इस बात पर लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली, 'जंकी, मुझे कोई चोट-वोट नहीं लगी।" लड़के का नाम जंकी था, लड़की का पानेइ। तब जंकी ने कहा, "पानेइ, अब तो यहाँ मैं नहीं रुकने का। चलो, चलें।" पानेइ—"हाँ, भाग चलना ही ठीक रहेगा। झुटपुटा भी हो चला है।"

फिर दोनों मीरी बालक-बालिका नाव पर जा बैठे। लड़के ने पतवार वाली माँगी पर खड़े होकर नाव खेना शुरू किया। लड़की आगे वाले सिरे पर खड़ी होकर उधर के चप्पू चलाने लगी। चप्पू के ताल-ताल पर लड़की गाने लगी :

"दूर कईं[1] ना लेना बूँईं[2] ऐ चेनेङा[3]
दूर कईं ना लेना बूँईं—

---

१. कईं=कहीं (मीरी उच्चारण की नक़ल पर)।

मीरी जब असमिया बोलते हैं तो महाप्राण व्यंजनों को भी अल्पप्राण बना लेते हैं (स्पर्श वर्गों के दूसरे वर्णों के स्थान पर पहले वर्णों और चौथे वर्णों के स्थान पर तीसरे वर्णों का उच्चारण करते हैं), तथा चारों ऊष्म वर्णों के स्थान पर स्वर-मात्र का ही उच्चारण करते हैं। भाषांतर की भाषा अनुवादक की कल्पना की है, मीरी उच्चारणों और कुछेक मीरी शब्दों की छौंक वाली हिंदुस्तानी।—अनु०

२. बूँईं (=भूँईं)=धरती, खेत। (पहली पाद-टीका देखिये)।

३. 'चेनेङा' मीरी शब्द है। अर्थ, 'प्रीतम'।

आते पिराती य' पतली कमरिया, ऐ
जाले पिराती पिंडलिया—"

उसके बाद लड़के ने गाया :

बड़ी नदिया का निरमल पानी, ऐ कनेङ[1], ऐ
नदिया का निरमल पानी—
उससे भी निरमल नन्ही य' कनेङ, ऐ
जैसे कठौते का पानी—"

इसी तरह 'नाम' गाते-गाते उजाला रहते ही नाव उस पार जा लगी। मीरी बालक-बालिका अब नाव छोड़कर किनारे उतरे। अपने-अपने घर जाने लगे तो पानेइ ने जंकी से कहा, "अरे जंकी, अरे जंकी, कल हमारे घर खेल होगा। तू आना हाँ, जरूर आना!"

जंकी—"अच्छा, ज़रूर आऊँगा पानेइ।"

---

१. 'कनेङ' (मीरी शब्द)=प्रेयसी।

२

लखीमपुर नगरिया में

आज बैसाख के बड़े 'बिहू' का दिन है। घर-घर, क्या भले लोग और क्या और लोग, सारे असमिया लोगों के मन आज उत्सव के उत्साह और उमंग से भरे हैं। सभी आनन्द-मगन हैं। घर-घर खान-पान और भोग-राग की धूम-धाम है। बरस-भर के दुख-दुर्दैव और हाय-तौबा को भूल-भालकर आज असमिया मानव बरस-दिना के 'बिहू' में बगछुट और उतावला हो रहा है। सब अपने बंधु-बांधवों से मिल-जुल रहे हैं। सभी अपने गुरुजनों को सेवा-सत्कार से रिझाकर बरस-भर के कुसल-छेम के लिए असीसें ले रहे हैं। हमजोली लड़के-बाले एक-संग जुड़-जुड़कर हँसी-ठिठोली के मज़े लूट रहे हैं। भले घरों में औरतें इकट्ठी बैठी पचीसी चौपड़ खेल रही हैं। तीन-तीन चार-चार खिलाड़ियों के बीच कोई एकाध नौजवान मर्द-मानुष भी बैठा है। माँ-बेटे दोनों चौपड़ की बिसात के आमने-सामने वाली पंखियों पर बैठे कौड़ी डाल रहे हैं।

कौड़ी पिलाने में ज़नाने हाथ बड़े सधे होते हैं। छै में से एक कौड़ी को अँगूठे तले दाबकर पाँच कौड़ियाँ बिखेरती हुई माँ दस के बोल पर दस ही पिलाती है। इसे देखकर चतुर बेटा भी माँ को हराने के लिए ठीक उसी तरह कौड़ियाँ लगा-लगाकर डाल रहा है। माँ बेटे की आँखों से लेकर हाथ तक की एक-एक गति को भाँप रही है। इस बार बेटे ने भी दस के बोल पर दस पिला लेने की जुगत कर ली। पर इसे भाँपकर माँ ने पहले से ही दावा कर रखा था, "ऊँहूँ, तू तो कौड़ी लगाकर डाल रहा है !" बेटा बोला, "अच्छा, अच्छा, मत लेने दे ! यह देख, हिलाये-डुलाये ले रहा हूँ कौड़ियाँ। फिर मत कहना कि लगाकर डाला है।" और उसने बाज़ी डाल दी। बेटे के भाग, इस बार पचीस की बाज़ी पड़ी। यह देखकर माँ भी लगाकर डालने की विद्या का सहारा लेना छोड़ नहीं सकी। दिखाने को तो कौड़ियाँ हिला-डुला लीं, पर डालती बेर एक कौड़ी अँगूठे तले दाबकर दस की बाज़ी डाली। माँ की इस कारस्तानी को देखकर चतुर बेटे ने माँ को हराने के लिए इस बार एक नया उपाय निकाला। उसने बिसात की चोरी शुरू की। दस घर चलाना होता तो पन्द्रह घर गिन लेता, चार चलाना होता तो कुकड़ी छठे घर में रखता। माँ घात लगाये रही और बेटे की यह चाल भी औचक पकड़कर माँ ने हँसी-हँसी में ही उस पर एक मुक्का जमा दिया। बेटा खिलखिलाकर हँसता हुआ "ऊहूँ, मैं नहीं खेलता, जा" कहकर उठा और वहाँ से खिसक गया। उसके बाद वहाँ पर बैठी स्त्रियों ने एक और बिटिया को बुलाकर फिर नये सिरे से खेल शुरू किया। उधर बाहर वाले खंड में तीन-चार जने बाबू मिलकर बैठे ताश खेल रहे थे। खेल में बैठ न सकने या बिहू देखने जा न सकने से उदास एक बाँदी बिचारी तम्बाकू जुटाने से फ़ुरसत ही नहीं पा रही थी। बाबुओं में एक का चेहरा कोमल-कोमल-सा है, जिस पर दाढ़ी उगी है। रंग गोरा है। यह बाबू बड़ा ही हँसोड़ है। उसका उद्देश्य कोई

ताश खेलना नहीं, बल्कि केवल मज़े लेना है। इसके ठीक विपरीत, वह दूसरा बाबू, जो उसके सामने बैठा है और जिसके लंबोतरे चेहरे पर दाढ़ी अभी नई ही नन्ही-नन्ही उगने लगी है और जो मन का बड़ा ही सरल आदमी है, ताश का एक ही उस्ताद है। ताश हाथ में लेते ही वह सारे संसार को भूल जाता है। फिर तो उसे बस एक ही चिंता रहती है कि किस तरह ताश के पत्ते जल्द-जल्द पटके जायँ। अपने हाथ से पत्ता चलते समय वह पत्ते को मानो तोड़ डालना चाहता है और बीच-बीच में अपने सामने बैठे दढ़ियल बाबू को देखकर "मल्ला मल्ला (मरा मरा)" चिल्ला उठता है। सामने बैठा बाबू "मल्ला" शब्द पर चेतकर सीधा तन बैठता है, "मोल्लाजित" (गुलाम) फेंकता है; और बीच-बीच में अपने शत्रु (खेल के शत्रु—ले०) के मुँह को ताक-ताककर हँसते-हँसते बिखर-बिखर पड़ता है। एक नाटे से दुबले-पतले बाबू भी ताश खेलने बैठे तो हैं, पर ताश का कोई चाव उन्हें नहीं है। ताश का पत्ता देते समय वह अक्सर यह कहकर पत्ता छोड़ते हैं कि "ओह, मुझे चलना है क्या ?" और सो भी कहने पर ही छोड़ते हैं। भड़कीली देह-धजा वाले अलग-थलग से बैठे हुए एक और बाबू हैं, जो इधर दुबले-पतले बाबू की बातें भी सुनते हैं, कितनी बार रँगीले गोरे बाबू की ठिठोलियों पर हँसते भी हैं और कितनी बार आप भी बड़े ठाठदार अंदाज़ में दो-चार अक्षर बोल उठते हैं। गोरे बाबू बीच-बीच में अपने हाथ के हल्के पत्ते नीचे डालकर नीचे पड़े पत्तों में से अच्छे-अच्छे पत्ते उठाकर फिर जहाँ-का-तहाँ उसे रख देते हैं। इस कार्य में वह बीच-बीच में कृतकार्य भी हो जाते हैं। दो-एक बार लंबोतरे बाबू की तीक्ष्ण कटाक्ष-दृष्टि की चपेट में आकर दोनों में बातों की बतकट ठन भी जाती है। इस तरह खेल, गप्प, आमोद-प्रमोद, तम्बाकू का शौक़ इत्यादि सभी साथ-साथ चल रहे हैं। मुफ़स्सिल के अंदर जगह-जगह युवक-युवतियों के दल इकट्ठे होकर बिहू गा रहे हैं। कोई-कोई

लत्ते की गेंद खेल रहे हैं। इस तरह सारे लखीमपुर में आमोद-प्रमोद की धूम मची है। दिन बीता, धीरे-धीरे साँझ हो आई। उस पार के दियारे के मीरी लोगों के कुछेक झुण्ड ढोल-ढपली लिये लखीमपुर उतरे और इस घर से उस घर बिहू गाते फिरने लगे।

आज बड़े बिहू का दिन है। बिहू गाने वाले मीरी झुण्ड-के-झुण्ड उतरने लगे। सारा लखीमपुर उनसे भर गया। ढोल-ढपली लिये मीरी युवक-युवतियों के दल राहों-बाटों में जहाँ-तहाँ फिरते रहे। एकाध झुण्ड मीरी भले लोगों के घर बिहू छेड़े हुए हैं, तथा रुपये-अठन्नी का कर वसूल करने के लिए बाबुओं के घर पर 'अन्याय' करने लग पड़े हैं। इन्हीं मीरी लोगों में एक मीरी ऐसा है, जिसने सभी के मन आकृष्ट कर लिये हैं। उसके झुण्ड के युवकों के पास चार-पाँच ढोल, तीन-चार जोड़े झाल और दो तुरहियाँ हैं। दल में नाचने वाली युवतियाँ भी बहुतेरी हैं। इस मीरी-दल ने एक बाबू के घर बिहू छेड़ा। पहले ढोल का नाच चला। चारों-पाँचों ढोलकियों ने एक-साथ डौंड़ियाँ चलानी शुरू कीं। लगे हाथों झाल भी झंकार उठे और युवतियाँ भी नाचने लगीं। उसके बाद ढोलकिये और तुरहियों वाले ब्याह के नहान-घर में भँवराते वर-वधू की तरह घूमने लगे। युवतियाँ भी नाचती-नाचती पाँतों-ही-पाँतों में घूमने लगीं। अब ढोलकियों ने कभी दाँये से बाँये, तो कभी बाँये से दाँये हाथ में ढोल ले-लेकर बजाते हुए होड़-बदी का नाच शुरू कर दिया। ढोल-ढपली बंद पड़ी तो बाबुओं का हुकुम हुआ कि "अब युवतियाँ खुद तालियाँ बजा-बजाकर गाती हुई नाचें।" झट ढोलिये-तुरहिये एक ओर को हो रहे। युवतियों ने पाँत बाँध ली। पहले एक युवती ने हथेलियों का ताल देकर गीत छेड़ा :

रङा[१] नदिया की दार[२] रङा नदिया की दार
दीरे-दीरे[३] बुबलाय रे बुबलाये
चार अंगुल कचार[४], चार अंगुल कचार
दिन बर[५] में बर[६] जाय रे, बर जाये ।
कली चंपा सी लेडेङ[७], चंपा सी नार
डुल-डुल[८] सी गात पतलाय रे पतलाये,
मत नचा-नचा मार रे मत नचा-नचा मार
कोमल कली तक[९] जाय रे तक जाये !

साथ-साथ नाच भी चल पड़ा। उसके बाद एक युवती ने गाया :

"पाटक[१०] की कुटिया पै उतरीं सरकार मेरी
दर दी कआरों ने[११] डोली
ऐ लावरी[१२], दर दी कआरों ने डोली

---

१. 'रङा नदी' लखीमपुर शहर से तीन मील पश्चिम की ओर है । इसके किनारे पर बहुत-सी मीरी बस्तियाँ हैं ।—लेखक
२. धार (पृष्ठ ६ की पहली पाद-टीका देखिये) ।
३. धीरे-धीरे (,, ,, ,, ,,) ।
४. कछार (,, ,, ,, ,,) ।
५. भर (,, ,, ,, ,,) ।
६. बढ़ (,, ,, ,, ,,) ।
७. 'लेडेङ' (मीरी शब्द)=प्रेयसी ।
८. ढुल-ढुल (पृष्ठ ६ की पहली पाद टीका देखिये) ।
९. थक (,, ,, ,, ,,) ।
१०. फाटक (,, ,, ,, ,,) ।
११. धर दी कहारों ने (,, ,, ,, ,,) ।
१२. 'लावरी' (असमिया शब्द)=रूपसी, प्रेयसी ।

कानों में जिलिङ[1] नरा-जाङ पाइ[2]
तन पै गोमेचेङ[3] की चोली
ऐ लावरी, तन पै गोमेचेङ की चोली ।"

फिर एक तीसरी युवती ने गाया :

"गोल-गोल काट की कंगी[4] बनाई
लेडेङ[5] के जूड़े के जोग
लेडेङ का जूड़ा तो सूने का सूना
बावरी को कोने का[6] रोग ।"

उसके बाद एक और युवती ने गाया :

"नाचने वाली पड़ी बीमार ऐ चेनेङा[7]
नाचनी तेरी पड़ गई बीमार

---

१. 'जिलिङ' (मीरी शब्द)=झलकें ।

२. 'नरा-जाङ पाइ' (मीरी)='जाँफाइ' कुंडल मणि ।
'जाँफाइ' (मिचिमि शब्द), एक पारदर्शी मधुरंगी गोंद, जो उत्तर-पूर्व असम के मिचिमि पहाड़ों में पाया जाता है । आदिम जातियाँ इसे कुंडल मणि के रूप में कानों में पहनती हैं ।—अनु०

३. 'गोमेचेङ'=गोमचेङ । पहले असम में इस नाम का एक उमदा कपड़ा होता था, जो अब पाश्चात्य सभ्यता के फलस्वरूप लुप्त-प्राय है ।—लेखक

४. काठ की कंघी (पृष्ठ ६ की पहली पाद-टीका देखिये) । क्या युवक और क्या युवतियाँ, सभी मीरी अपने जूड़ों में लकड़ी की नन्ही-नन्ही कंघियाँ खोंसे रखते हैं । इस कंघी का स्थान उनके शृंगार में बहुत ऊँचा होता है ।—लेखक

५. 'लेडेङ' (मीरी)=प्रियतमा ।

६. खोने का (पृष्ठ ६ की पहली पाद-टीका देखिये) ।

७. 'चेनेङा' (मीरी)=प्रीतम ।

नाचनी सहेलियों ने मुरगी जो काटी[1]
तो नाचनी फिर उटके तैयार ।"

गीतों के बाद युवक-युवतियों ने दस्तूरी के लिए हठ ठाना । बाबुओं में से एक ने कहा, "ओहो, तुमने तो फाँकी दी है, फाँकी । सभी युवतियाँ अभी नाचीं ही कहाँ ? उधर वह जो दो हैं, उनके नाच तो अभी हुए ही नहीं ।" इस पर उन दोनों युवतियों ने कहा कि "हम नाचें तो पाँच-पाँच रुपये देने होंगे ।" इस पर एक बाबू ने हँस-हँसकर कहा, "अच्छा अच्छा, देंगे, नाच तो पहले ।" ये दोनों युवतियाँ पतली थीं । एक का रंग हल्का साँवला था । दूसरी बिलकुल गोरी थी । दोनों के चेहरों की गठन निहायत ही प्यारा-प्यारा था । प्यारे-प्यारे जूडों में फूल खुँसे थे । 'रिहा' और 'मेखेला' दोनों[2] चिकने मूँगा-रेशम की थीं । चोलियाँ रंगीन फ़लालैन की थीं । उन दोनों के आगे बढ़ते ही युवकों के झुण्ड में से एक कोई बीसेक बरस का नौजवान तुरही लेकर निकल आया । युवक ने भी चिकनी-चुपड़ी माँग काढ़ रखी थी, जिसके ऊपर पगड़ी थी । गले में बड़े-बड़े मूँगों के साथ गुँथे सोने के दानों का एक हार था । कानों में सोने की पत्तियों में नगीने-सी जड़ी 'जांफाइ' के दो कुण्डल थे । बदन पर धारीदार कोट था । धोती ठाठदार ढंग से पहन रखी थी । युवक कोई वैसा लंबा नहीं था, पर कोई नाटा भी नहीं । चेहरा नुकीला-सा था ।

---

१. मुरगी काटी=देवता पूजे । मीरी बीमार होने पर दवा नहीं खाते । देवधाइ (मीरी पुरोहित—अनु०) से उचरवाते हैं कि बीमारी किस देवता ने लगा दी है । फिर उसी देवता को दारू, सूअर और मुरगी चढ़ाकर पूजते हैं ।—लेखक

२. असमिया स्त्रियों के कंधों पर ओढ़नी या चुन्नी-सी 'रिहा' और कमर में तहमद-सी 'मेखेला' उनका अपना विशेष पहनावा है ।—अनु०

दोनों युवतियों के आगे बढ़ते ही युवक ने तुरही फूँकी और तुरही के बजते ही दोनों युवतियाँ चंचल हो उठीं। तीनों तुरही बजा-बजाकर नाचने लगे। उनके नाच और उनकी फुरती को देखकर ऐसा लगता था मानो दो अप्सराएँ गंधर्वराज चित्ररथ के साथ धरती पर उतर आई हों। दोनों युवतियों में जो गोरी थी, वह औरों की आँखें बचाकर उस युवक की आँखों में झाँक-झाँककर मुस्कुराने लगी। वह कोई चौदह-पंद्रह बरस की होगी। पहले अध्याय में सोवनशिरी के किनारे मचान पर बैठा खेत की रखवाली करता जो लड़का हमें मिला था, वह अब हमारा यही तुरही-वादक युवक है। उसका नाम है जंकी। गोरी युवती पानेइ है। आज पाँच बरस के अन्तर पर दोनों पूरे युवक-युवती के रूप में परिणत हो चुके हैं।

नाच बंद हुआ। बाबुओं को एक रुपये का दंड हुआ। नाचने वाली मीरी युवतियाँ चली गईं। बाबू लोग बैठे नाच पर टीकाएँ करते रहे। कोई कहता कि "अच्छा नाच रही थीं।" तो कोई कहता कि "बुरा नाच रही थीं।" इसी तरह टीकाएँ करते हुए दो-तीन चिलम तम्बाकू उड़ाकर सभी अपने-अपने घर चले गए।

३

मेरी गाँव में

"द बैशफ़ुल वर्जिस साइडलाँग लुक्स ऑव लव्ह—
द मैट्रंस ग्लांस दैट उड दोज़ लुक्स रिप्रूव्ह—
दीज़ वे'र दाइ चार्म्स, स्वीट विलेज !
स्पॅर्ट्स लाइक दीज़ विद स्वीट सक्सेशन—
टॉट ईव्न ट्वॉय्ल टु प्लीज़ ।"[१]

—गोल्डस्मिथ

---

१. "क्वाँरी की वे कनखियाँ लजीली, प्यार की—
घूरती निगाहें ताई की, फटकार की,—
मीठी यादों वाले ओ मेरे गाँव—यही
जादू थे, माया थी तेरे संसार की !
जो मधुर शृंखला थी इन रागों-रंगों की,
खटनी तक को वह सुख देना सिखलाती थी !" —अनु०

पिछले अध्याय में मैंने जिन घटनाओं का विवरण दिया है, उन्हें घटित हुए छै माह हो गए। आज कातिक महीने का हफ़्ता लग चुका है। सोवनशिरी के किनारे बसे मीरी गाँव में अभी-अभी पौ फटी है। मीरी-गाँव में आज बड़ी धूम-धाम है। युवक-युवतियों ने अच्छे-अच्छे ठाठदार कपड़े-लत्ते पहन रखे हैं और हाथों में टोकरियाँ लिये वे चावल, नमक, तेल, उड़द, लोबिया आदि ढो रहे हैं। घर-घर थालियों और परातों को जुटाया जा रहा है। उस ओर लगभग बारह आदमी मिल-कर छै सूअर[1] साँगरे का भार बनाये ढोये लिये आ रहे हैं। दो आदमी एक बड़े से ऊँचे साँचे में कोई दो कोड़ी मुरग़ों[2] का भार ढोये ला रहे हैं। घर-घर से बूढ़ियाँ बड़े बड़े पतीले, लोटे, कटोरे आदि निकाल रही हैं। आनंद और उल्लास के मारे युवक-युवतियों के दल आपस में हाथापाई तक कर रहे हैं। भोर पहर की कच्ची धूप धीरे-धीरे पक चली। सारे माल-असबाब 'मरङ-घर'[3] में ला रखे गए। धीरे-धीरे आबाल-वृद्ध नर-नारी मरङ-घर की ओर लपकने लगे। एक-एक आदमी मरङ-घर में पैठता गया और अलग-अलग बैठता गया। ये जो बूढ़े मीरी हैं, उनमें से अधिकतर रात-सेवा[4] के भगत हैं। पक्के भगतों

१.-२. ये चीजें बैसाख के बिहू में बटोरे गए धन से मोल ली जाती हैं।

३. मीरी लोगों का सार्वजनिक धर्मघर। मीरी लोग मचानिया घरों में रहते हैं। 'मरङ घर' में भी मचान के ऊपर ही बना होता है।

—लेखक

४. असम देश में 'रात-सेवा' एक अत्यंत ही गुप्त धर्म है। इस सम्प्रदाय के लोग पक्के भगत कहलाते हैं। इनमें सभी जाति के लोग हैं। यह पता अब तक नहीं लग सका कि यह धर्म असल में है क्या ? 'सेवा' रात को ही बैठती है और रात को ही उखड़ जाती है। इसमें गोपीधरा, नागाकीर्तन, फूलकीर्तन, दिगंबरी आदि कई

ने कच्चे भगतों से अलग-अलग अपने निराले आसन लिये। उनकी पाँत से थोड़ा हटकर उनके साधु ने एक पृथक् आसन ग्रहण किया। इधर इस ओर, कच्चे पंथ के सभी लोग एक अलग पाँत बनाकर बैठे। उनका अगुआ था उनका देवधाइ[1]। इस प्रकार सबके अलग-अलग बैठ

क्रियाएँ होती हैं, जिनके नाम-भर ही मैंने सुने हैं, यह आज तक जान नहीं पाया हूँ कि इनमें होता क्या है। ऐसे कुछ-न-कुछ 'गुप्त धर्म' हर कहीं है। शिलथ (सिलहट) जैन्तिया में 'किशोरी भजन' नाम के गुप्त धर्म की बात सुनी है। पच्छिम के सभ्य जगत् में, योरप में 'लॉज या फ्री-मैसन' नाम की एक क्रिया होती है। आज दो हजार बरस हो गए, पर इस क्रिया का भेद कोई खोल नहीं सका। लाख विद्वान् या धनी-मानी होने पर भी लोग एक बार जिज्ञासावश दीक्षित हो लेने के बाद फिर किसी भी अदीक्षित को, यहाँ तक कि अपने पुत्र-कलत्र को भी वह रहस्य नहीं बतलाते। समझ में नहीं आता कि बतलाते क्यों नहीं, अपने धर्म या ज्ञान की जोत संसार में फैलाने के लिए प्रचार क्यों नहीं करते। —लेखक

१. मीरी अपने पुरोहित को 'देवधाइ' (देओधाइ) या 'मिबुआँ' कहते हैं। डालटन, हनटर आदि अँगरेज लेखकों की किताबों में इस बात के आँखों देखे अद्भुत विवरण हैं कि देवधाइ क्या और कैसे होते हैं। जिसे देवधाइ होना होता है, उसमें छुटपन से ही एक विशेष चिह्न होता है। उसके वयस्क और उपयोगी होने पर देवता अपने अनुग्रह के पात्र उस व्यक्ति पर एक बार पहले ही उतरते हैं। वह भागकर जंगल में छिप रहता है। सुनते हैं कि वहीं वह खूब पगलाता है। फिर सभी देवताओं के साथ साक्षात्कार करके वह घर लौट आता है। उसी दिन से वह 'देवधाइ' या 'मिबुआँ' कहलाने लगता है। —लेखक

चुकने पर सभी पक्के भगत अपने साधु की आँखों में झाँकने लगे। साधु ने उसी समय 'ॐ' शब्द का उच्चारण किया। झट पाँच मुरगे और दो सूअर धो-पोंछकर लाये गए और भगतों के बीच डाल दिये गए। साथ ही रसोड़े के अन्यान्य सामान भी युवक-युवतियों ने लाकर भगतों के बीच धर दिए। सभी चीज़ें आ जाने पर साधु ने दो बार इधर-उधर देखकर फिर 'ॐ' का उच्चारण किया। फ़ौरन मरङ के भीतर मौजूद सभी युवक-युवती-जन भगत के आगे सम्मान पूर्वक घुटने टेककर बैठ गए। इस पर भगतों ने श्री गुरु शंकर माधव[1] के नाम सुमिरकर युवक-युवतियों को आशीर्वाद दिये।

"बोलौ तुम सकल-समाज; श्री गुरु के चरण चिन्तौ, जातें हमारौ इन युवक-युवतिन कौ पुनि पूरे बरस लौं तिन श्री गुरु के चरणन में ऐसी ही सेवा करन की शक्ति मिलै। ये कुसल-छेम सों रहैं, इनके मन सदा रंग-राग-आनंद सों भरे रहैं। पूरे बरस खेती-बाड़ी भली होवै। मेघ और बिजली अनियाव ना करें। श्री गुरु के चरण हमैं शीतल राखें। ओ राम, ओ हरि !"

इस तरह आशीर्वादी समाप्त हुई। युवक-युवती-जन उठे। फिर अनुमति लेकर रसोई-पानी के काम में लगे। नैवेद्य पकाये जाने लगे। इधर सभी भगत-जन कटोरों-कटोरों अमृत-पान करने लगे। भगत लोग कटोरे आप अपने हाथों में नहीं ले सकते। एक-एक भगत को

१. 'महापुरुषीया' वैष्णव धर्म के प्रवर्त्तक तथा समाज-सुधारक श्री शंकरदेव और उनके प्रधान शिष्य श्री माधवदेव। पंद्रहवीं सदी ईसवी के ये धर्मनेता ही असमिया संस्कृति और साहित्य के आदिपुरुष हैं। इसीलिए असमिया वर्ष-गणना भी इन्हींसे प्रारंभ होती है, जिसे शंकराब्द कहते हैं। —अनु०

एक-एक भगतिन अमृत-पान करा रही थी। तभी सबोंका अमृत-पान हो सका। इस तरह अमृत का श्राद्ध समाप्त हुआ। अब भगतिया कीर्तन की बारी थी। साधु ने गीत[1] छेड़ दिया :

"बहत मरन कोरि नदिया, तीर पर हंस रहे,
आहो रे प्रभु, जीव रहे !
देखो रे देखो मोरे मीत, काया गत कैसि सहे,
चोला रे गत कैसि सहे !
कागा, गीध, सियार, जगत महादानि कहे,
स्यार महादानि न हे !
काया माँस-दुकान, गीध मिलि नोंचि रहे,
बोटियन बाँटि रहे !"

इस तरह कीर्तन हो लिया। उधर रसोई-पानी की तैयारियाँ होती रहीं। जिन युवक-युवतियों को पक्के भगत लोगों ने आशीर्वाद दिये थे, उनमें जंकी और पानेइ की जोड़ी भी थी, जिसका उल्लेख मैंने दूसरे अध्याय में किया है। कह नहीं सकता कि उन दोनों ने आशीर्वाद लेते समय भी किस शक्ति के कर वशीभूत होकर अपने घुटने साथ-साथ सटाकर टेके थे। उनके बीच इधर-उधर की कोई बात हुई हो तो हुई हो, मैंने तो बिलकुल नहीं देखा। तथापि किस शक्ति के बल पर वे दोनों एक ऐसी महान् क्रिया के समय एक-संग वर माँग ले सके, इसका भेद मेरी समझ में अब भी नहीं आया। जो हो 'साज'[2] यथासमय तैयार हो गया। सारी सगोती पूरी-की-पूरी हाँड़ियों-हाँड़ियों लाके भगतों के

---

१. यह भगतिया पंथ का एक देह-विचार गीत है। —लेखक
(हिंदी-प्रांत के 'निरगुन'-जैसा।—अनु०)

२. नैवेद्य।

बीच में रख दी गई। पंगत पड़ी। परोसना हो लिया। 'साज' बाँट दिया गया। तमाम बूढ़े-बूढ़ियाँ, तमाम पक्के-कच्चे भगत आनंद के साथ 'साज' 'पाने' लगे। युवक-युवती-जन बैठे नहीं, उन्हें भगतों के 'साज' 'पाने' के समय भी घुटने टेककर बैठना पड़ा।

इस तरह भगतिया क्रिया की समाप्ति हुई। आशीर्वाद कर-करा लेने के बाद कोई एक बजे तक पक्के भगत-भगतिनों का समुदाय अपने-अपने घर गया। उसके बाद हँसी-ठिठोली करते, आनंद मनाते, धमाचौकड़ी मचाते युवक-युवती-जन भगतों की बची-खुची 'प्रसादी' 'पाने' बैठे। युवक एक पाँत में बैठे। युवतियाँ भी एक अलग पाँत में बैठकर खाने लगीं। मगर कैसे अचंभे की बात है। खाते समय भी पानेइ-जंकी दोनों ठीक आमने-सामने ही बैठे थे। इस तरह खाते-पीते दिन ढल गया। रात हुई। युवक-युवती-जन दारू के घड़े-के-घड़े चुका डालने के बाद इस छोर से उस छोर तक डोलने लगे। उसके बाद देवधाइ-महापुरुष हाथ-पैर धोकर 'मरङ' पर चढ़े। युवक-युवतियों और कच्चे भगतों को भी उन्होंने भीतर हाँक लिया। उसी क्षण देवधाइ ने गाया :

6275

"दरमिसि तुलाय ऐ तिरमेके तिरमाङाय
अकबे कन्वङ् आपुने रेयेपे रेयाबाय !"[1]
युवक-युवती मीरी भी समान स्वर में गाने लगे :
"दरमिसि तुलाय ऐ तिरमेके तिरमाङाय
अकबे कन्वङ आपुने रेयेपे रेयाबाय !"

१. यह मीरी लोगों के जातीय कीर्तन का गीत है। इसका अर्थ मैं तो क्या, मीरी लोगों में से भी हर कोई बता नहीं सकता। अर्थ सिर्फ़ देवधाइ ही जानते हैं। —लेखक

'नाम' गा चुकने पर ढोलक पर थाप पड़ी। देवधाइ को बीच में करके सभी युवक-युवती-जन कछारियों के 'माँदल-थाप' नाच की तरह या संथालों के 'जूम' नाच की तरह ढोलक के ताल-ताल पर एक नये ढंग से घूम-घूम कर नाचने लगे। नाच समाप्त होने पर देवधाइ ने फिर गाया :

"दरमिसि तुलाय ऐ तिरमेके तिरमाङाय
अकबे कन्बङ् आपुने रेयेपे रेयाबाय !"

फिर पहले की तरह दुबारा नाच हुआ, दुबारा गान हुआ। फिर नाच-गान बंद हुआ। फिर देवधाइ ने मचान के ऊपर कोई एक हाथ की ऊँचाई पर जाप मारकर मंत्र पढ़ा :

"ङक्केरूम्ने ताबे लिकरे !......"[१]

युवक-युवतियों ने गाया :

"दरमिसि तुलाय ऐ तिरमेके तिरमाङाय
अकबे कन्बङ् आपुने रेयेपे रेयाबाय !"

देवधाइ ने फिर जाप मारकर मंत्र पढ़ा :

"...काङ्रे बकायगा !"[२]

युवक-युवतियों ने गाया :

"दरमिसि तुलाय ऐ तिरमेके तिरमाङाय
अकबे कन्बङ् आपुने रेयेपे रेयाबाय !"

---

१. "हे मेरे सिरजनहार देवताओ !
तुम इन्हें (सच्ची राह)..."

२. "........ बतलाओ !"

'अब क्या युवक-युवती और क्या देवधाइ, सभी थक चले । सभी उठे और छप्पर की जाफ़री की ओट में रखा अमृत कटोरों-कटोरों पीने लगे।

अमृत-पान समाप्त हुआ। फिर सभी दुबारा पहले की ही तरह 'जूम' नाचने लगे। इस बार देवधाइ ने नये उत्साह से तान छेड़ी :

"दादाम् बनेङ् बनेङ् दादिङ्
पेकामा कामदामा कलपि कलपि
कामदाङा नितुङा कलपि कलपि !"[१]

फ़ौरन युवक-युवतियों ने भी समान स्वर में गाया :

"दादाम् बनेङ् बनेङ् दादिङ्
पेकामा कामदामा कलपि कलपि
कामदाङा नितुङा कलपि कलपि !"

फिर ढोल-ढपली वजी । फिर युवक-युवतियों ने नाचना शुरू किया। 'लावबाँही'[२] और झाल के शब्द से पूरा गाँव मानो गरज उठा। रात भी काफ़ी हो चली थी। इस तरह मीरी लोगों की 'चाङदोप'-क्रिया[३] चलती रही। इस 'चाङदोप' क्रिया के साथ-साथ

---

१. यह टेक है। इसका अर्थ मुझे मिल नहीं सका।—लेखक

२. यह 'लौकी-बाँसुरी' सँपेरों की बीन-जैसी होती है। मीरी इसे 'नराछिगा' 'बिहू' में बजाते हैं।—लेखक

३. पद, कीर्तन, टेक, नाच, बाजे आदि की समस्त क्रियाओं का सामुदायिक नाम है 'चाङदोप' या 'देओदोप' क्रिया। मीरी, नगा इत्यादि प्रायः सभी पहाड़ी जातियों में ऐसी कोई-न-कोई एक क्रिया होती

दारू के दौर भी चलते रहे। देवधाइ के शरीर पर देवता का आसन उतर आया। धीरे-धीरे मीरी देवताओं के नाम और देवधाइ के पद और भी बुलंद होते गए। रात बीत चली थी, पौ फटने-फटने को थी। तभी देवधाइ ने गाया :

"पाङ्केया रेगरेगे
पामिया रेगरेगे।"[1]

अब देवता ने देवधाइ के सारे शरीर पर अधिकार कर लिया। रेगी-रेगाम से कासिङ कार्टान[2] उतर कर देवधाइ पर सवार हुए। इस

ही है। यह एक मंगल-याचना-प्रणाली है। हमारे (मैदानी) असमिया लोगों में प्रचलित 'भात उठने' के नियम की तरह। —लेखक

१. ये दोनों पंक्तियाँ भी टेक की हैं। अर्थ तो इनका भी मैं समझ नहीं सका, पर सुनते हैं कि मीरी-धर्मशास्त्र में 'रेगी-रेगाम' नाम के किसी ऐसे पहाड़ का नाम आता है, जिस पर उनके सभी देवता रहते हैं। इहलोक में सत्कर्म करने पर आदमी मरने के बाद इसी पहाड़ पर जाता है। हनटर साहब की किताब 'स्टॅटिस्टिकल अॅकाउंट' देखिये। वह लिखते हैं, "दे हैव अ रेजिन ह्विच इज द अबोड ऑव ऑल दे'र गॉड्स् एंड फ़्रॉम हूज़ बूर्न नो पिलग्रिम रिटर्न्स्। (उनका एक ऐसा लोक है, जिसमें उनके सभी देवों का वास है और जिसकी सीमाओं से कोई यात्री वापस नहीं आता।—अनु०) देवधाइ ने रेगी-रेगाम का नाम लिया, इससे मैं यह अनुमान कर सकता हूँ कि रेगी-रेगाम से 'पाङ्केया' और 'पामिया' नाम के देवता उतरकर उसके शरीर पर सवार हो गए थे। इस टेक का मैंने यही अर्थ लिया है।—लेखक

२. नर व मादा सितारों के देव-देवी।

पर देवधाइ बेहोश हो रहा। युवक-युवती-जन घुटने टेककर हाल पूछने लगे :

"हे प्रभो ! वाक् दो, पक्का वचन दो कि पूरे वरस-भर हमारी खेती-बाड़ी भली होगी। होगी न ?"

देवधाइ—"होगी।"

युवक-युवती—"मेघ-बिजली हम पर कोई अनियाव नहीं करेंगे ?"

देवधाइ—"मेरी पूजा भली भाँति करो तो कोई हानि न होगी, कोई विघ्न न होगा।"

युवक-युवती—"गाँव में सरदी-खाँसी का ज्वर-ताप तो न होगा ? कोई बीमार तो नहीं होगा न ?'

देवधाइ—"नहीं होगा। पर मेरी पूजा भली भाँति करनी होगी।"

युवक-युवती—"करेंगे प्रभो, भली भाँति करेंगे। अच्छा, वाक् दो कि हम सारे युवक-युवती, हम सभी जने भली तरह रहेंगे तो ?"

देवधाइ—(कुछ रुककर) "ओंऽ, रहोगे, पर कुछ बुराई भी होगी।"

युवक-युवती—"कह डालो प्रभो ! बुराई क्या होगी ?"

युवक-युवतियों के इस प्रश्न पर देवधाइ बड़ी देर तक चुप साधे रहा। आखिर बोला भी तो क्या-क्या अगड़म-बगड़म बोल गया। युवक-युवतियों में से कोई भी उसकी बात समझ नहीं पाया। इतने में देवता उसकी देह से उतर गया। देवधाइ उठ बैठा और कुछ भी कहने में असमर्थ हो उठा। इस तरह चाङदुपि (चाङदोप) का अध्याय इधर पूरा हुआ और उधर पौ फट चली। फिर सभी नदी में नहा-धोकर आये और ज्वर-ताप की पूजा[1] शुरू कर दी। उस पूजा को

१. यह मीरी जाति की सार्वजनिक पूजा होती है। पूरे का-पूरा-गाँव मिल-जुलकर इसके लिए धन जुटाता है। यह पूजा 'नराछिगा'-

करते-कराते दुपहरी हो आई। कासिङ-कार्टन, मत्तबे, चिनेक, दहमुख, दङकङ, लौजि-लेइताङ, मुग्लीङ-मिरेमा इत्यादि सभी देवता दारू, सूअर, मुर्गे आदि की पूजा खाकर स्व-स्व-स्थाने सिधार गये। देवधाइ प्रसादी खा-पीकर उठा और पाँच रुपये तथा एक जोड़ा कपड़ा पाकर अपने घर गया। और-और वयस्क मीरी भी अपने-अपने घर गये। पर युवक-युवतियों का बिहू अभी बन्द नहीं हुआ था। बेर भाटे पर थी, दिन ढल रहा था। युवक-युवती-जन 'मरङ' के आगे आनंद और मस्ती में बिहू ठाने धमाचौकड़ी मचाये रहे। झुण्डों-झुण्डों नाच चले। जिसे जिस झुण्ड में मन भाया, वह उस झुण्ड में जा लगा। पानेइ और जंकी दोनों एक ही दल में रहे। इस बार पहले जंकी ने ही बिहू-गीत छेड़ा :

"चैत के गये न गये, चढ़ते बहाग[1] के
पूल उठीं[2] बेला की बगियाँ
कहते न ओर मिले, सुनते न छोर मिले
नन्ही-सी लेदेङ[3] की बतियाँ।"

जंकी का गाना समाप्त हुआ। ढोल बजे। पानेइ की अगुआई में युवतियों ने नाचना शुरू किया। नाच समाप्त हुआ तो इस बार पानेइ ने गाया :

बिहू के अवसर पर और कभी-कभी गाँव में चेचक, महामारी आदि होने पर की जाती है। इसमें अपने भाव के प्रधान-प्रधान देवताओं को वे दारू, सूअर, मुर्गे आदि चढ़ाकर पूजते हैं।—लेखक

१. बैसाख।

२. फूल उठीं।

३. प्रियतमा।

"चुनमुन चिड़ैया ने भंटकँटैया के तले
सूँस-मगर मार दिया जान से !
ऐसे-ऐसे न दोष मढ़ना चेनेङ[1] ए
होते न साँझ के बिहान से !

किसी और झुण्ड में किसी युवक ने गाया :

"अकासी सुपारी, बयाँ बसे फुनगी
गिर न जाय कहीं, देखना, ओ देखना !
नन्ही मंगेतर ने खाट पकड़ ली,
मर न जाय कहीं, देखना, ओ देखना !"

इसके बाद एक युवती ने गाया :

निहुरी-निहुरी उगाई बाबरी[2]
आराम-बिरिक[3] में जान खपाके

---

१. प्रियतम।

२. 'बाबरी' : कनफोड़ा, एक सुगंध साग। संस्कृत में इसे 'बर्बरी' और 'वर्वरी' तथा मराठी में तिल्लवणी कानफोडा कहते हैं।—अनु०

३. 'आराम-बिरिक' : लखीमपुर के मीरी बड़े-बड़े जंगल साफ़ करके उसमें 'आहू' धान, सरसों आदि उगाते हैं। इन नौतोड़ खेतों में तीन-चार साल तक तो फ़सल ख़ूब तगड़ी होती है, पर उसके बाद मिट्टी बिगड़ जाती है और खेती के लायक़ नहीं रह जाती। फिर मीरी उसे छोड़ देते हैं। ऐसी खेती को वे 'आराम-बिरिक' या 'हाराम-बिरिख' कहते हैं। इसके कोमल पौधे सुखाने पर बेजोड़ ईंधन होते हैं।—लेखक
(उड़िया कंध जंगल जलाकर ऐसी ही अस्थायी खेती की ज़मीन निकालते हैं और इसलिए उसे 'पोड़ू खेती' कहते हैं। —अनु०

जिसे देख भर जाती, वह तो दिखे नहीं
क्या होगा अगिया में नजरें लगा के ?"

यों ही नाच-गान चलते रहे। न नाचों का कोई ओर था, न गानों का छोर। एक तो मीरी-युवक-युवती-जन सदा के रँगीले होते हैं, दूसरे ऊपर से अमृत-रस ने उन्हें और भी मतवाला कर छोड़ा था।

ऐसे ही नाचते-नाचते मौक़ा ताककर जंकी ने अकेले में पानेइ के पास जाकर कहा, "पानेइ, कहीं एक बार मुझसे मिल सकेगी तू ? मुझे दो-चार बोल-बातें करनी हैं तुझसे।" जंकी की इस बात पर पानेइ बोली, "बहुत अच्छा, हम यहीं रहें, मौक़ा ताककर मैं सोवनशिरी की रेती पर चली जाऊँगी, तू भी वहीं आ जाना ! जो कहना चाह रहा है, कहना !" पानेइ और जंकी ने पल-भर में ये बातें कर लीं, किसी को पता तक नहीं चला। रात को भी नाच-गान के दौर चलते रहे। फिर जब युवक-युवतियों के खाने का समय हुआ, पानेइ अपने कहे मुताबिक मौक़ा ताककर अकेली-अकेली ही सोवनशिरी की रेती की ओर निकल गई। जंकी भी 'ज़रा घर हो आऊँ' कहकर घर की ओर निकला, पर असल में घर न जाकर गया सोवनशिरी की रेती पर। पलक मारते-न-मारते वह बिजली की गति से पानेइ के बिलकुल पास जा पहुँचा। पीछे से कहा, "पानेइ—"

पानेइ—"जंकी !"
जंकी—"आ गया ?"
पानेइ—"आयी हूँ जंकी।"
जंकी—"तुझसे एक बात पूछने को जी चाह रहा है।"
पानेइ—"क्या बात है जंकी ? पूछ ले !"
जंकी—"पक्की कह पानेइ, मुझे प्यार करती है ना ?"

पानेइ—(हँस-हँसकर) "इस बात की तुझे क्या जरूरत आ पड़ी जंकी ?"

जंकी—"पानेइ, तू बुरा मान गई क्या ? तुझसे कुछ नहीं पूछूँगा।"

पानेइ—(फिर हँस-हँसकर) "पूछा ! नहीं किसलिए पूछेगा—"

जंकी—"तो पक्की बता, मुझे चाहती है ना ?"

पानेइ—"मैं कह नहीं सकती।"

जंकी—"समझा पानेइ ! मुझे नहीं चाहती तू। नहीं तो भला आज नाच में तू बार-बार कमुद की ओर क्यों देख रही थी ?"

पानेइ—"आय-हाय ! तू कैसी बातें कर रहा है ?"

जंकी—"हाँ पानेइ, मैंने अच्छी तरह समझ लिया है, तू कमुद को ही चाहती है। अब तक छुटपन से ही दोनों एक साथ खेतों की जो रखवाली करते आये, रीछ उतरने पर जो एक साथ दौड़ लगाई, नाव पर बैठकर जो एक-साथ 'नाम' गाये, और उसके बाद से दोनों संग-संग ही जो हाथों में हाथ डाले कहाँ-कहाँ न घूमा किये, सो सब तू भुला चुकी है, शायद। पर मैंने नहीं भुलाया। तेरी आशा में ही इतने दिन जीता रहा हूँ। पानेइ, अब अगर तू यह कहे कि तू नहीं चाहती मुझे, तो अब और जीने का ठौर नहीं है कोई मेरे लिए। पानेइ, मेरे माँ-बाप मुझे छुटपन में ही छोड़कर मर गए। बचपन से ही मैं तेरे संग-संग बड़ा हुआ हूँ। तुझे ही अपना मानता आया हूँ। पानेइ, फिर भी अब तक तू मुझे चाह न सकी !"

पानेइ जंकी की ये बातें स्तब्ध मन से सुनती रही। मेरी भोली मीरी बिटिया के मन को ठेस लगी। जिस सोते के मुँह को वह आज तक बड़े जतन से बाँधे हुई थी, जंकी के वाक्यों के फावड़े की चोट से उसके हृदय के उस सोते का मुँह खुल गया। चोट खाकर थमी नदी

वह चली। भोली पानेइ की आँखों से झर-झर करती जलधार उतर पड़ी। झट जंकी ने उसे पकड़कर छाती से चिपका लिया और उसकी आँखों के आँसू पोंछ डाले। इसके बाद पानेइ ने कहा :

"जंकी, मैं तुझे ही चाहती हूँ, तुझे ही अंतर से प्यार करती हूँ, तुझे ही सदा अपनी आँखों के आगे रखे रहती हूँ। तूने आज कमुद को चाहने की जो बात कही है, वह सरासर झूठ है।"

जंकी—"पानेइ, मेरा क़सूर माफ़ कर! बुरा मत मान! प्यारी मेरी! जब तक यह जान है, मैं भी तुझे ही प्यार करता रहूँगा। पानेइ, मुझे छोड़ना मत, मुझसे कभी अलग न होना! कह दे, मुझसे ब्याह करेगी न?"

पानेइ—"माँ-बाप ब्याहेंगे तभी तो तेरे पास जाऊँगी?"

जंकी—"कौन जाने, माँ-बाप कहीं तुमको मुझे न सौंपें? मेरा कोई नहीं है। हाथ में पैसा-कौड़ी भी नहीं है।"

पानेइ—"मेहनत करने पर पैसे तो तुझे मिलेंगे ही। तू मेहनत करके कुछ पैसे जोड़ने की राह कर। जब तक तू पैसे जोड़कर मुझे मेरे माँ-बाप से ले नहीं लेता, तब तक मैं भी किसी के पास नहीं जाऊँगी। जाऊँगी तो तेरे ही पास जाऊँगी। आज सोवनशिरी की इस रेती पर खड़ी होकर कार्सिङ-कार्टोन को साखी बद रही हूँ।"

जंकी—"पानेइ, आज तूने मेरी देह में नया बल दिया। जाने दे पानेइ, आज से ही मैं जी-जान से खट-खपकर पैसे जोड़कर तुझे लूँगा-ही-लूँगा। तुझे न पा सका तो यह जीवन भी नहीं रखूँगा।"

इस बातचीत के बाद दोनों दो ओर को चले गए। वहाँ से आकर दोनों ने फिर मरङ-घर के बिहू में योगदान किया। इस बार पानेइ और जंकी दोनों ही कहीं अधिक उत्साह के साथ नाचे। इस तरह दो दिनों के बाद बिहू समाप्त हुआ।

४

पानेइ के घर पर

नराचिगा बिहू[1] को बीते आज दो माह हो गए। उस रात जंकी के साथ जो बातचीत हुई थी, उससे पानेइ के पहले वाले सभी भाव, पहले की सभी बातें, बदल गई थीं। उसके चेहरे पर आजकल मस्ती और आनंद के वे चिह्न अब अधिक नहीं खेला करते। बल्कि बीच-बीच में उसके चेहरे के ऊपर काले-काले-से बादल छा-छा जाते हैं।

सच पूछिये तो उसके मन में छुटपन के उस दिन से ही, जब कि वह 'आहू' की धनखेती में मचान पर बैठी रखवाली करते समय रीछ

---

१. 'नराचिगा बिहू' : पिछले अध्याय में जिन क्रियाओं का विवरण है, उन्हीं (के पूरे उत्सव—अनु०) को 'नराचिगा बिहू' कहते हैं। यही मीरी लोगों का सबसे बड़ा बिहू है। —लेखक

के डर से उतर भागी थी, जंकी के प्रति न जाने क्या तो एक अपूर्व भाव उग आया था। बचपन के उन्हीं दिनों से उसे जंकी को देखते रहना बहुत भाता था। जंकी के साथ मनाये राग-रंग और आनंद के सिवा उसे और कोई आनंद मनाना बिलकुल सुहाता नहीं था। जंकी के प्रति उसका यह जो एक कैसा-कैसा-सा भाव हो गया था, वह असल में क्या था, सो वह आप भी बता नहीं सकती थी और न ही अपने मन से पूछकर अपने लिए भी कोई निदान ठीक कर सकती थी। सचमुच, आठ-नौ बरस की छोरी भला प्रेम का मोल समझ ही क्या सकती है? फिर भी, जंकी के प्रति उमड़ आये उसके इस आग्रह का कारण क्या हो सकता है? वह तो खैर नहीं ही जानती, पर मैं भी, पाठको! अब तक कोई खास समझ नहीं पाया हूँ। हठात् प्रणय? पर प्रणय को समझने के लिए तो वे दोनों ही बच्चे थे। वह नौ बरस की थी और वह चौदह बरस का था। उनके भीतर किसी उपन्यास में वर्णित प्रणय जैसा प्रणय हो सकता था? जंकी के लिए बाध्यता का भाव? सो भी नहीं। मीरी जाति अभी भी इतनी उन्नत नहीं हो सकी है कि आठ-नौ बरस की कोई छोरी बाध्य-बाधकता का भेद पा सके। फिर, क्या था वह? मैं भी यही पूछता हूँ, कि असल बात क्या थी? बहुत-बहुत विचारकर देखा, अब आखिर इसी बात पर मन मना लिया है कि एकाकी बालक-मात्र अपने बाल-स्वभाव-सुलभ खेल-कूद में बचपन से ही जिसके संगी बन जाते हैं उनके अंदर आपस में जो एक तरह का भाव पैदा हो जाता है, वही भाव इन दोनों के हृदय में भी था। पानेइ और जंकी सदा संग-संग ढोर चराया करते थे। दोनों सदा संग-संग सोवनशिरी के रेत में उछल-कूद मचाया करते थे। पानेइ-जंकी संग-संग ही नाव खेते थे। पानेइ-जंकी दोनों सदा संग-संग ही माघ-बिहू और बैसाख-बिहू में नाचा करते थे। पानेइ-जंकी दोनों ने संग-संग ही शहर जाकर 'बिहू' 'डाला' था। यह जो संग-संग घूमना, संग-संग नाव खेना आदि बातें

हैं। इन बातों से दोनों के भीतर आपस में एक-दूसरे के प्रति छुटपन से ही एक अच्छा लगने का भाव, एक भाने-सुहाने का भाव-सा पैदा हो गया था।

अगर ऐसे भाव के दृढ़ता से जड़ें जमा लेने के पहले ही पानेइ-जंकी अलग हो रहे होते, दोनों में कुछ आँतर आ गया होता, दूरी आ गई होती, तो कौन जाने, शायद दोनों एक-दूसरे को भूल भी सकते थे। पर कह नहीं सकता कि ईश्वर ने किस उद्देश्य से दोनों को सदा साथ रखा। काल-क्रम से दोनों ने यौवन में प्रवेश किया। पर एक-दूसरे के प्रति दोनों के भाव पहले-जैसे ही रहे। यौवन में प्रवेश कर चुकने के बाद भी पानेइ का छुटपन का स्वभाव न छुटा। स्वच्छन्द पानेइ अब भी उसी तरह खुले सिर फिरती छुटपन के संगी जंकी के सँग खेलती-कूदती रही। उन दोनों के हृदय में एक-दूसरे के प्रति प्यार के भाव ने दृढ़ रूप से जड़ें जमा लीं। पानेइ कोशिश करके भी यह समझ न पाई कि उसके मन को कौन-सी बात इतना मथ रही है, कि इस युवती-वयस में उसकी इच्छा जंकी को इतना चाहने की क्यों हो रही है। और जंकी? जंकी के हृदय को भी कुछ वैसे ही भाव मथे डाल रहे थे। पर जंकी था मर्द-मानुष, जंकी था पुरुष। वह अपने मन के भाव को नराचिगा-बिहू के कुछ पहले से ही समझ चुका था।

उस रात नराचिगा-बिहू के जिस मुहूर्त्त में जंकी ने सोवनशिरी की रेती पर पानेइ को अपने मन के भाव जताये थे, उस क्षण पानेइ की छाती तले कोई सुप्त आग उसी तरह भड़क उठी, जिस तरह कि बहुत दिनों से धान की भूसी में सोती-सुलगती आ रही कोई चिनगारी कभी-कभी यकायक धू-धू करके जल उठती है। भोली (बेलज्ज?) मीरी बिटिया के सरल प्राणों ने कार्सिङ-कार्टोन को साखी बदकर जंकी को बड़े जतन से अपने हृदय में प्रतिष्ठित किया। उसने उसे वचन

दिये। और उसी दिन से जंकी के प्रति उसका प्यार और भी अधिक गाढ़ा हो उठा। अब वह इसी चिंता में रहने लगी कि कब और कैसे अपने हृदय के देवता के साथ मिलकर एक हो रहूँ।

जंकी भी उसके दूसरे ही दिन से बड़े जतन के साथ खेती-बाड़ी में जुट पड़ा। और बार अगर वह एक 'पूरा'[1] धरती में सरसों बोता था तो इस बार पूरे तीन पूरे में बोई। प्रणय का बल ही कुछ ऐसा होता है!

उस रात जंकी के साथ बातें हो लेने के बाद पानेइ अपने माँ-बाप की बातों पर अधिक ध्यान देने लगी। ठीक वही करती, जो उसके माँ-बाप चाहते। बिहू में अधिक आवा-जाई करना छोड़ दिया। इस बात के बड़े जतन किये कि माँ-बाप को हर तरह से संतोष दे सके।

पानेइ की माँ का नाम था 'निरमा' और बाप का 'तामेद'। दोनों मीरी जाति के भीतर भी औरों से कहीं अधिक दीन-दुखिया थे। उनके और कोई बाल-बच्चा नहीं था। ले-देकर बस यह इकलौती पानेइ ही थी। इसीलिए पानेइ के छुटपन के दिनों से ही वे उसे बहुत प्यार करते थे।

आजकल पानेइ के स्वभाव में उसके माँ-बाप को कुछ-कुछ ऐसा हेर-फेर दीखता था, जिससे वे थोड़ा अचरज में पड़-पड़ जाते थे। इससे वे यह समझ सके कि पानेइ पूर्ण यौवन में प्रवेश कर चुकी है और उसे ब्याह देने का समय अब आ पहुँचा है।

इसके पहले ही एक दिन कमुद पानेइ से ब्याह करने का प्रस्ताव

१. एक 'पूरा'=चार बीघे (चार 'हालिचे' या चार 'दोण')।
—अनु०

ला चुका था। कमुद उसी गाँव के 'गाम'[1] का लड़का था। तामेद और निरमा ने मन-ही-मन इस बात पर बहुत-बहुत विचार किया था, पर दोनों में से कोई भी किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सका था। अब पानेइ के मन के भाव देखकर उन्होंने यही राय ठहराई कि अब तो सचमुच ही पानेइ को ब्याह देने का समय आ गया है। इतने दिनों तक ब्याह न होने से ही वह उदास है।

इसी तरह एक दिन साँझ-पहर 'चाङ'[2] के अन्दर अलाव के पास बैठे बूढ़े-बुढ़िया के बीच बातें चल रही थीं। पानेइ उस समय पानी लेने घाट गई थी। निरमा ने कहा :

"अब तो पानेइ बड़ी हो गई। उसे कहीं ब्याहने की कोई राह तो अब करनी ही होगी।"

तामेद—"हाँ, मैं भी मन-ही-मन यही सोच रहा हूँ। पानेइ को किसे सौंपूँ ?"

निरमा—"क्यों, वह जो जंकी छोरा है ना, उसके साथ पानेइ की जोड़ी कैसी अच्छी रहेगी ? वैसे, उसका और है भी कोई नहीं।"

---

१. मीरी गाँव के अन्दर 'गाम' का वही स्थान होता है जो हमारे असमिया लोगों के बीच चौधरी या मौजादार का (हिन्दी प्रान्तों में जेठरैयत, चौधरी, मुखिया, लम्बरदार, सरपंच आदि का —अनु०) होता है। मीरी के हर क़बीले में एक-एक 'गाम' होता है।

२. मीरी 'चाङ' या मचानदार घर में रहते हैं। धरती से लगा घर उन्हें प्रायः नापसंद होता है। पर गोलाघाट, जोरहाट आदि की ओर के कितने ही मीरी लोगों ने अब 'चाङ' बनाना छोड़ दिया है और इस मामले में भी वे पूरे असमिया हो चले हैं। —लेखक

तामेद—"उसका कोई नहीं है, इसीलिए तो उसे पानेइ को सौंपने की मेरी इच्छा और भी नहीं होती। उस फटेहाल भिखारी को बेटी देने में क्या रखा है ?"

निरमा—"क्यों ? हमें और बाल-बच्चे तो हैं नहीं, वही बेटा होके रहेगा।"

तामेद—"बेटा होकर रहने से ही तो पेट नहीं भरेगा ?"[१]

निरमा—"तो फिर उसे किसको सौंपने की सोच रहे हो ?"

तामेद—"मेरे विचार में इसे कमुद के हाथों में डाल देना ठीक रहेगा। वह नमेन 'गाम' का बेटा है। नमेन गाम ने एक बार आप भी कहा था मुझसे। उसीको दूँगा अपनी बेटी।"

निरमा—"पर उसे बेटी दे डालने से पहले मैं एक बार पानेइ से पूछ-ताछ क्यों न कर लूँ ? बेटी से पूछना तो अच्छा न होगा ?"

तामेद—"वाह, बेटी से भी कोई पूछता है कि तुझे किसे ब्याहूँ ? यह वह कहे कि 'मैं तो किसी गाछी-मीरी[२] के घर जा बैठूँगी', तो फिर वही होगा क्या ? मैं तो उसे कमुद को ही ब्याहूँगा। उसे जाना पड़ेगा उसके पास। मैंने कमुद के बाप को बात दे रखी है।"

---

१. पाठक इस किताब में मीरी-ब्याह के नियम जान लेंगे। यहाँ पर यह मोटी-सी बात बता दूँ कि मीरी बेटी पर तीन कोड़ी (साठ) से लेकर कोई दो-तीन सौ तक का दहेज लेते हैं। जो दामाद यह दहेज नहीं दे पाता उसे दो बरस तक ससुर के घर काम करना पड़ता है। इसे 'जोवाँइ' खटना (यानी दामादी खटना) कहते हैं। यह नियम मिकिर लोगों में भी प्रचलित है। —लेखक

२. यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि मीरी पहाड़ी और मैदानी दो तरह के होते हैं। पहाड़ी छोटे आबर वंश के और हमारे मैदानों के चायेङ्गिया, अयेङ्गिया, दामुकियाल, छुटिया, बैतियाल, मरङ्गिया आदि मीरी बड़े आबर-वंश के माने जाते हैं। —लेखक

निरमा—"अच्छा, तो फिर वही हो। उसे कमुद को ही दिया जाय।"

तामेद—"हाँ, मेरा मन तो वही है। तू आज से बीच-बीच में कभी-कभाक पानेइ के आगे कमुद की बातें चलाया कर! अगली दोमाही के लगते-न-लगते कमुद 'जोवाँई' खटने आ जायगा।"

बूढ़े तामेद के इस निर्णय के छोर तक पहुँचते-न-पहुँचते पानेइ पानी लेकर घर आ पहुँची। घर के भीतर पैठने के पहले ही उसने बाप के मुँह से इतनी बात सुन ली कि "अगली दोमाही के लगते-न-लगते कमुद 'जोवाँई' खटने आ जायगा!" बात की ढलान की दिशा उसने उसी क्षण समझ ली। और उसी क्षण हमारी भोली मीरी बिटिया के सिर पर एक-साथ एक हज़ार वज्रपात-जितनी चोट आ पड़ी। जो हो, यह दृढ़ निश्चय करके वह मन की चोट मन में ही रखे रही कि कह-सुनकर माँ-बाप को मना लूँगी। परन्तु एक अस्फुट अव्यक्त भाव से पानेइ का हृदय कँपकँपा उठा। उसका हृदय भीतर-ही-भीतर रो उठा।

५

सोवनशिरी नदी के वक्षस्थल पर

"हाउ रिचली ग्लोज़ द वाटर्स ब्रेस्ट
बिफ़ोर अस टिंज्ड विद ईवनिङ् ह्यूज;
ह्वाय्ल फ़ेसिङ दस द क्रिमज़न वेस्ट
द बोट हर सायलेंट कोर्स परसूज़!
ऐंड सी हाउ डैंक द बास्कवार्ड स्ट्रीम!
अ लिट्ल् मोमेंट पास्ट सो स्माइलिङ्!"[१] वर्ड्स्वर्थ।

१. "संझा की रंगा-रंगी से रंगीन हुई
कितनी आभा से भास्वर है जल की छाती!
मुँह किये रक्तिमारंजित पश्चिम को, नैया
चुपचाप मौन-गतिपथ पर बढ़ती ही जाती!
पर देखो, कैसी गिजबिज तपनमुखी धारा—
बस वही एक लघु पल, मुसकाते जो बीता!" —अनु०

बेर झुटपुटा रही है। आकाश अभी भी सुन्दर निर्मल है। सिंदूरी आसमान की झाँई सोवनशिरी के पानी में पड़ रही है, जिससे सोवन-शिरी का पानी भी सिंदूरी रंग का हो उठा है। सोवनशिरी नदी के वक्षस्थल पर मृदु-मंद बयार बह रही है। सोवनशिरी माई रिप्-रिप् रिप्-रिप् सुर के साथ बह रही है। उधर दूर, मीरी गाँव के भीतर, आग जल रही है। एकाध बिहू-ढोल मीरी-गाँव में बज रहा है। इधर सोवनशिरी नदी यों ही चौड़ी है। दोनों किनारे हरी घास है। जगह-जगह पर रेत के सुन्दर दियारे हैं। कुल पाँच मील की दूरी पर पहाड़ के अभिराम दृश्य हैं। तिस पर साँझ-पहर की यह लहराती आती मृदु बयार! इधर सूरज अभी डूबा भी नहीं था कि उधर पूरब में पूनों का चाँद निकल आया। सोवनशिरी नदी के रूप क्षण-क्षण कैसे-कैसे *मनोहारी दृश्य उपस्थित कर रहे हैं! इन दृश्यों का वर्णन करना* चाहूँ भी तो कर न सकूँ। मुझमें वैसी शक्ति ही नहीं है। अगर कोई कभी ऐसे समय में, ठीक ऐसे ही दिन नाव पर सवार होकर सोवनशिरी के 'पथाली पाम' इलाक़े [1] की ओर घूमने निकला हो, तो बस वही आदमी यह समझ सकेगा कि जिस दृश्य का विवरण मैं दे रहा हूँ वह क्या चीज़ है? कवित्व की शक्ति होती तो उस दृश्य के वर्णन में एक पूरी पुस्तक ही लिख डालता। सचमुच, कातिक और अगहन के महीनों में ऐसे समय में सोवनशिरी की छाती पर सैर करना अत्यन्त ही सुन्दर-सुखकर होता है। प्रकृति के सौंदर्य पर मन मोहित हो जाता है। करुणासागर परमेश्वर के ऐसे सुदृश्य देखकर उसके प्रति भक्ति का संचार होता है। नितांत अभावुक भी भावुक हो उठता, भाव का वशीभूत हो उठता है।

ऐसे ही समय में, ऐसे ही मनोमोहक समय में, एक छोटी-सी नाव

---

१. **लखीमपुर के इलाक़े में एक स्थान। वहाँ आजकल एक चायबगान भी है।—लेखक**

में सवार पाँच मीरी युवतियाँ सोवनशिरी के ऊपर से गुजर रही हैं। पाँचों देखने में अच्छी हैं और पाँचों के ही होठों पर हँसी और चेहरों पर आनंद है। पाँचों के ही बदन पर अच्छे-अच्छे साफ़-सुथरे कपड़े हैं, अच्छी-अच्छी साफ़-सुथरी 'रिहाएँ' और 'मेखेलाएँ' हैं। जिस नाव में वे बैठी हैं, वह इतनी छोटी है कि और-तो-और, इधर के लोगों को जाना हो तो पाँच की बात तो दूर रही, तीन का भी एक साथ जा पाना कठिन होगा। पर मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि 'मीरी जाति के ऊपर सोवनशिरी माई का स्नेह कुछ अधिक है।' इसीलिए मीरी जाति के सभी लोग, और-तो-और, तीन-चार बरस के छोटे-छोटे बच्चे भी, ऐसी नन्ही नावों पर सवार होकर निर्भय चित्त से आवा-जाई कर सकते हैं। उस समय उस वैसे दृश्य के बीच इन सुघड़ मीरी युवतियों को एक साथ देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वर्ग से इन्द्र की सभा की पाँच अप्सराएँ मर्त्यलोक में मौज मनाने उतर आई हों। अथवा मानो पाँच जल-परियाँ पानी से उभरकर आनंद मनाती खेल-कूद रही हों। अथवा मानो सोवनशिरी माई के अपने ही पेट की पाँच बेटियाँ बाहर आकर जरा गरमाये ले रही हों। दो युवतियाँ नाव के दोनों सिरों पर बैठी चप्पू चला रही थीं। बाक़ी तीन नाव की गोदी में खड़ी-खड़ी गा रही थीं। उन्हींमें से एक खड़ी-खड़ी ही बिहू के सुर में 'गगना'[१] बजा रही थी। अहा! गगना का स्वर भी कितना मधुर है! मेंढ़क की आवाज़ की तरह गों-गों शब्द करते मंद-मंद बिहू-'नाम' बज रहे हैं। धन्य है मीरी युवतियों की वह बुद्धि, जिसने इस सामान्य

---

१. 'गगना' मीरी युवतियों का ही एक बाजा होता है। बाँस की एक छोटी-सी टुकड़ी के सिरे पर मूगा रेशम की डोर बाँधकर उसे उस बाँस के भीतर से दुहो तो उसमें से मेंढ़क की जैसी एक तरह की आवाज निकलती है। मीरी युवतियाँ उसीके सुर पर बिहू गाती हैं। बिना सीखे हर कोई गगना नहीं बजा सकता।—लेखक

वाद्य-यंत्र का आविष्कार किया है। तीन-चार बार 'गगना' का संगीत चला। उनमें से एक गगना बजाती रही और बाक़ी दो हाथों से तालियाँ देती रहीं। पाठको, आपने पहचाना, कि गगना बजाने वाली वह मीरी बिटिया कौन है? वही है हमारी पानेइ। ये पाँचों युवतियाँ 'अपने हाथ के खेतों'[1] की रखवाली करने गई थीं और अब झुटपुटा पड़ने पर घर को लौट रही हैं।

गगना बजाने से जी न भरा। तब रकमी नाम की युवती ने पानेइ से कहा, "पानेइ, कोई 'नाम' गा।" पानेइ ने गाया :

"धार के उलटे नाव चलाके फेंके जाल चेनेङ
रे मेरा, खींचे जाल चेनेङ रे SSS...
साँस-झकोरे प्राण झुलाती दौड़ी जाय लेदेङ
तट पर, भागी जाय लेदेङ रे SSS...
दो झरनों-सी झरती आँखें, भीग गए हैं गाल
रे मेरे, गीले हो गए गाल रे SSS...
तन के बसन पसीने से तर, पानी-पानी हाल
रे मेरे, पानी-पानी हाल रे SSS..."

पानेइ ने जब गाना बंद किया तो रकमी ने उससे कहा, "पानेइ, अब मैं एक गीत गाती हूँ, सुन" :

---

१. 'अपने हाथ के खेत' : मीरी युवतियाँ परिवार के तैयार किये खेतों में तो काम करती ही हैं, साथ ही ख़ुद अलग-अलग भी एक 'हालचा' (बीघा) या दो 'हालचा' धरती गोड़कर सरसों बोती हैं। उस सरसों की बिक्री से जो आमदनी होती है, उसीको वे अपने तेल-सिंदूर आदि पर ख़र्च करती हैं।

—लेखक

"धार के उलटे श्रान के पहुँचा कंपनिया जहाज
रे कंपनिया जहाज
ले चल मुझे कलकत्ता जहाज रे, पूछूँ बलम के राज
रे जाके पूछूँ बलम के राज ।"

इस गीत के समाप्त होते ही पाँचों युवतियाँ ठहाका मारकर हँस पड़ीं । उसके बाद किरमाय नाम की एक और युवती कहने लगी :

"अरी ओ पानेइ, ओ पानेइ, कुछ ही दिनों में तेरा ब्याह होने वाला है । कमुद 'जोवाँइ' खटने जा रहा है, है ना ?"

पानेइ—"कौन जाने ? कह नहीं सकती ।"

किरमाय—"तुझे अच्छा नहीं लगता ? थोड़े ही दिनों में तेरा बिटियापन तेरा क्वाँरपन मिट जायगा और तू छोरे की माँ हो रहेगी ।"

पानेइ—"क्या ठिठोली करती है किरमाय ! मैं नहीं जाती किसीके पास । अच्छा सुन, गाती हूँ" :

"घूँट-घूँट पानी पिये हथिया-हथिनिया
डबरा-डबर पिये भैंस
किसी के भी पास मैं न जाऊँगी कनेड़ ऐ,
नैहरा में ही रहूँ हमेंस !"

पानेइ का गीत गाना समाप्त हुआ तो रकमी ने बात छेड़ी : "अच्छा, री पानेइ, कल न परसों, जब तू चली जायगी, तब हमें तो भूल ही जायगी, शायद । तेरे मुँह की यह बात तो मुँह में ही रही ।"

पानेइ रकमी की इस बात का जवाब अभी दे भी न पाई थी कि दूर किसी और नाव पर स्पष्ट पुरुष-कंठ से कोई गा उठा। पाँचों युवतियाँ कान लगाकर सुनने लगीं :

"धार से जुझार नैया खेवे मेरा कनेङा
ऊपर को जाय बड़ी दूर—
मेरा धन, ऊपर को जाय बड़ी दूर !
कब तक लौट घर आयगा रे कनेङा,
कब तक करूँ मैं सबूर ? मेरे धन, कब तक...
धार से जुझार नैया खेऊँ मेरी लाहरी
ऊपर को जाऊँ बड़ी दूर—
दूर प्यारी, ऊपर को जाऊँ बड़ी दूर
तू जो मेरे भाग में बदी हो मेरी लाहरी
तीन दिन किये ले सबूर ! मेरी प्यारी तीन दिन···"

किसने गाया यह 'नाम' ?—मीरी युवतियों के भीतर इसी सवाल पर बहस छिड़ गई। ऐसा गला किसका है ?—सब यही बात सोचने लगीं। पर पानेइ ने इन सवालों पर एक बार भी मुँह नहीं खोला। प्रणयिनी प्रणय की बिजली के बेतार से यह समझ चुकी थी कि यह गला किसी और का नहीं, उसीके हृदय-धन, उसीकी आँखों की पुतली जंकी का है। इसीलिए हँस-हँसकर उसने चारों लड़कियों से कहा, "तुम नहीं समझीं? अरी, वह जंकी गा रहा है जंकी। उसी का गला है।"

इस पर रकमी ने कहा, "हाँ पानेइ, तूने जंकी का गला ठीक पहचाना है, उसीका गला है यह।" इस बातचीत के बाद पानेइ ने कहा, "ये सब बातें सुनने की मुझे कोई जरूरत नहीं ! आह, मैं गाती हूँ" :

"नदिया बढ़े बड़े वेग से चेनेङ ऐ
नदिया बढ़े बड़े वेग रे

आगे से ही सगुन बिगाड़ मत चेनेङ ऐ
दो-दो ओर खींचें उद्वेग रे ?..."

पानेइ का गाना थमते ही उधर दूर से फिर उन्होंने उसी पुरुष-कंठ की तान सुनी :

"किस विधि मिलना होय ऐ कनेङ ऐ
किस विधि मिलन-उपाय रे
यहाँ से जो खिसकूँ तो पाऊँ तुझे कनेङ ऐ
आतुर करो न मन हाय रे !"

इस गीत के साथ-ही-साथ वह नाव मीरी युवतियों की नाव के पास आ लगी। उस नाव के आदमी के साथ बातें शुरू होने के पहले ही पानेइ गा उठी :

"उलट नचा ले मुझे पलट नचा ले
नचा-नचा कर चूर रे—
औघट घाट, रपट जो पड़े तो
मेरा न कोई कसूर रे...!"

पानेइ के इस गीत के समाप्त होते ही वह नाव एकदम सट आई। जंकी को देखकर कई युवतियाँ एक साथ बोल उठीं, "ओ-हो, तू ही था ?"

जंकी—"हाँ, मैं ही।"

रकमी—"तू गया था कहाँ ?"

जंकी—"तामेन गाम के मोड़ तक।"

रकमी—"क्या काम था ?"

जंकी—"एक आदमी के पास मेरे दस रुपये निकलते हैं। लेने गया था।"

पानेइ—"मिला ?"

जंकी—"आज तो नहीं दिये। कहा है, कल देगा।"

पानेइ—"अब घर जाना है ना ?"

जंकी—"हाँ !"

पानेइ—"तो चल फिर !"

जंकी—"पानेइ !"

पानेइ—"क्या कहना है, जंकी ?"

जंकी—"मैं तीन दिन और रहकर घूणा सूँती के गाँव चला जाऊँगा।"

रकमी—"वहाँ किसलिए जाना है जंकी ?"

जंकी—"रकमी, अब तक तो मैं यहाँ कमुद के घर में था। अब वह मुझे नापसंद करने लगा है। इसीलिए मैं घूणा सूँती जा रहा हूँ। वहाँ मेरी एक मौसी का घर है। वहीं रहूँगा।"

भादै—"तो तूने हमारा गाँव अब छोड़ दिया।"

जंकी—"हाँ भादै, मगर बीच-बीच में तुम्हारे गाँव आता रहूँगा।"

तुलाइ—"हाँ, आना, और आकर रहा भी करना, ज़रूर! तू था, तो बड़ा अच्छा था। हम बड़े मजे में खेलते-कूदते रहते थे। बड़ा आनंद था।"

जंकी—"क्या करूँ तुलाइ ? जाना ही पड़ रहा है।"

पानेइ—"जंकी !"

जंकी—"क्या कहना है, पानेइ ?"

पानेइ—"जाने के पहले एक बार मुझसे मिल लेना ! तेरे साथ मुझे कुछ बात करनी है !"

जंकी—"अच्छा पानेइ !"

इस तरह बातें करते-करते दोनों नावें किनारे पर आ लगीं। फिर सभी अपने-अपने घर चले गए।

६

खेत में और घर पर

दूसरे दिन पौ फटी। रोज़ की तरह पानेइ फिर खेत की रखवाली करने गई। जंकी पिछले दिन की बात के मुताबिक़ फिर तामेन गाम के मोड़ पर जाने के लिए एक छोटी-सी नाव लेकर निकला। पानेइ-का खेत राह में ही पड़ता था। सोचा, जरा सुनता चलूँ कि किसलिए मिलने को कहा था उसने। नाव का भितल्ला एक परती से टेककर जंकी ऊपर चढ़ गया और पानेइ के पास जा पहुँचा। दोनों की क़िस्मत अच्छी थी, उधर के सरेह में कहीं कोई आदमी-आदमज़ाद नहीं था। इसलिए दोनों को जी भर बातें कर लेने की सुविधा मिल गई।

पानेइ—"जंकी, तू अब यहाँ नहीं आयगा?"

जंकी—"बीच-बीच में आता रहूँगा। तेरी खोज-ख़बर लेता रहूँगा।"

पानेइ—"हाँ, आना! तेरे चले जाने से मेरा जी सूना-सूना रहने लगेगा।"

जंकी—"मुझे भी सूने-सूने जी से ही वहाँ रहना पड़ेगा, क्या करूँ? विधाता ने हमारे कपाल में सुख लिखा ही नहीं हैं शायद।"

पानेइ—"जंकी, कुछ पैसे-वैसे जोड़ लिये ना?"

जंकी—"कुल मिलाकर दो कोड़ी रुपये जुटा पाया हूँ। छै महीने में दो कोड़ी और जुटा सकूँगा। उसके बाद आकर तेरे माँ-बाप से मिलकर बातें करूँगा।

पानेइ—"जंकी, एक बात तो तूने नहीं सुनी?"

जंकी—"कौन-सी बात पानेइ! कह ना!"

पानेइ—"माँ-बाप तो मुझे कमुद के हवाले करने की सोच रहे हैं।"

जंकी—"उसके हवाले कर देने से ही क्या तू उसके पास चली जायगी?"

पानेइ—"कभी नहीं जाने की! मेरी बात मीरी कनेङ की बात है, कभी भी टस-से-मस नहीं हो सकती।"

जंकी—"फिर क्या करेगी?"

पानेइ—"कह-सुनकर माँ-बाप को अपनी ओर कर लूँगी।"

जंकी—"और अगर वे बदल नहीं पाए तो?"

पानेइ—"वह तो बाद की बात है। पर तू सदा मेरा हाल-चाल बूझते रहना, हाँ? कब क्या होता है, खोज लेते रहना! नहीं तो, तेरे न रहने पर अगर मेरे साथ जबरदस्ती की गई, जबरन उससे ब्याहा गया, तो मैं ज़हर खाकर मर जाऊँगी।"

जंकी—"अच्छा, पानेइ। मैं सदा ही तेरा हाल-चाल बूझता रहूँगा और मैं भी यह अपना जीवन तेरे लिए छोड़ने को तैयार हूँ। और कौन जाने पानेइ, शायद तेरे घर पर तुझसे बातें न कर सकूँ, इसलिए यहीं विदा लिये लेता हूँ। अच्छा चला—"

पानेइ—"जा!"

इस बातचीत के बाद दोनों अलग हो गए। दुःख के आवेग से दोनों की आँखें छलछला आई थीं। फिर जंकी धीरे-धीरे नाव पर जा बैठा और अपने उद्देश्य की ओर लक्ष्य रखते हुए नाव तामेन गाँव के मोड़ की ओर ले चला। कुछ ही दूर जाने पर जंकी ने बड़ी ही लंबी तान छेड़ी और ऊँचे सुर से सोवनशिरी माई की गोद में बड़ी ही व्यथा के बोल गाने लगा :

"धार से जुझार नैया खेऊँ मेरी कनेङ ऐ
ऊपर को जाऊँ बड़ी दूर—
मेरी धन, ऊपर को जाऊँ बड़ी दूर !
तू जो मेरे भाग में बदी हो मेरी लाहरी
तो तीन दिन किये ले सबूर ! मेरी प्यारी तीन दिन..."

धीरे-धीरे पानेङ की आँखों से नाव ओझल हो गई। सूने मन और झँवाये मुँह से पानेङ आसमान को निहारने लगी। और फिर आँखों से एक धार आँसू ढालकर अपने काम में लग गई। इस तरह दिन-भर खेत की रखवाली करके झुटपुटा पड़ने पर पानेङ फिर नियमित रूप से घर लौट गई। जाकर देखा कि माँ-बाप चाङ-घर के दरवाज़े पर बैठे हैं और उनके पास ही कमुद का बाप नमेन गाम दो भार सौग़ात लिये बैठा बूढ़े-बूढ़िया के साथ बातें कर रहा है। पानेङ सारा मामला भाँप गई। मेरी भोली मीरी बिटिया समझ गई कि उसका कपाल सूना है। पर करती क्या ? आँखों के आँसू ढालकर सो रही। सौग़ात सहेज लिये जाने के बाद नमेन गाम उठकर चला गया। तामेद और निरमा भी दोनों भीतर गये और अलाव के पास जा बैठे। निरमा ने पानेङ को पुकारा, "पानेङ, अभी साँझ को ही तुझे ऊँघ आने लगी क्या ? आ, इधर आ !" मन-ही-मन कुछ बड़बड़ाती हुई पानेङ उठी और आग के पास आ बैठी। उसके आने पर माँ ने

उससे कहा, "पानेइ बेटी, तू समझ तो सकी है न, बाछा ? तुझे कमुद के पास जाना होगा। आज तेरे बाप को छोटा भार मिल गया।"

पानेइ—"माँ, मैं किसी के पास नहीं जाती। सदा इसी घर में रहूँगी।"

निरमा—"मुँह रखने को कह रही है। अच्छा बाछा, कमुद अच्छा नहीं है क्या ?"

पानेइ—"माँ, मैं कुछ भी नहीं कह सकती।"

निरमा—"आय हाय ! तू कह नहीं सकती ? वह ठहरा गाम का बेटा ; धन-दौलत भी बहुत है उसके पास। उसके घर जाकर तू बड़े सुख से रहेगी।"

पानेइ—"माँ, धन-दौलत नहीं चाहिए मुझे।"

निरमा—"तो फिर, किसके यहाँ जायगी तू ?"

पानेइ—"किसी के यहाँ भी नहीं जाती मैं तो।"

निरमा—"तुझे कमुद के यहाँ जाना होगा।"

पानेइ—"मैं तो नहीं जाती उसके यहाँ।"

निरमा—"तो फिर किसके यहाँ जायगी तू ?"

पानेइ—"मैं घर ही में रहूँगी।"

पानेइ की इन बातों से माँ को संदेह हुआ। बूढ़े तामेद का कोप जगा। वह बोला, "निरमा, चुप रह ? इसीके सुख से सुख होगा ?"

पानेइ—"बापा, खिसियाते क्यों हो मुझ पर ?"

तामेद—"बेटी होकर तू हम माँ-बाप की बात क्यों नहीं मानती?"

पानेइ—"कौन-सी बात नहीं मानी है मैंने ?"

तामेद—"चुप रह। तुझे कमुद के यहाँ जाना ही होगा !"

पानेइ इस बात का कोई जवाब नहीं दे सकी। बूढ़े तामेद के कोप से चाङ दलमलाने लगा। अंतरतम के भीतर-ही-भीतर रो-रोकर पानेइ सो रही।

इस घटना के छै-सात दिन बाद कमुद दूल्हे की तरह सज-धजकर 'जोवाँई' खटने आ पहुँचा। और रीत-नेम के मुताबिक़ सारे रस्मी क्रिया-कलाप पूरे करके उसी दिन से दामादी खटने को तामेद के घर टिक गया।

७

दो मीरी-गाँवों में

उस दिन खेत में पानेङ से विदा लेने के बाद जंकी ने उसी क्षण अपना मीरी-गाँव छोड़ दिया और धूरणा सूँती के मीरी-गाँव में चला गया। वहाँ जाकर मौसी के घर में आश्रय लिया। मीरी जवानों में जंकी हर कहीं एक सुघड़ जवान माना जाता था। तिस पर जब वह तुरही बजाता तो सुनकर कोई भी मीरी युवती उस पर लट्टू हुए बिना रह नहीं सकती थी। युवती-मात्र ही उसके लिए बेचैन हो उठती। इसी कारण धूरणा सूँती गाँव के अंदर वह थोड़े ही दिनों में वहाँ के युवक-युवती-दल का एक अगुआ युवक हो रहा। बिहू होने पर जंकी को तुरही लेकर हाज़िर होना पड़ता। उसके बिना युवतियाँ गाने से इनकार कर देतीं। दो-चार युवतियाँ तो थोड़े ही दिनों में जंकी के प्रति प्यार के भाव दिखाने लगीं। पर यहाँ के सारे राग-रंग रहते हुए भी पानेङ के प्रति जंकी के मन में जो प्यार था, वह नहीं मिटा। जब-तब उसके कोमल मुखड़े पर विषाद

के बादल छा-छा जाते। और तो और, कितनी ही बार उसे इतना बुरा लगने लगता कि वह बिहू आदि किसी भी आमोद-प्रमोद में भाग लेने नहीं जाता। पर उसके न जाने पर और-और युवक-युवतियाँ उसे ज़बरदस्ती बिहू में खींच ले जातीं।

उस गाँव की युवतियों में एक युवती डालिमी नाम की थी। वह कोई तेरह-चौदह बरस की थी। वह उस गाँव के गाम की बेटी थी। मीरी युवतियों में वही सबसे अच्छा नाचने वाली थी। उसी तरह हमारा जंकी भी तुरही का उस्ताद था। इसीलिए उस डालिमी नाम की युवती के हृदय में धीरे-धीरे जंकी के प्रति एक आकर्षण जड़ें जमाने लगा। जिस दिन जंकी बिहू में मौजूद होता, उस दिन डालिमी के नाचने-गाने के उत्साह का कोई आर-पार न होता। जिस दिन जंकी सोवनशिरी के किनारे अपनी हृदय-देवी पानेइ का हाल-चाल बूझने जाता, उस दिन डालिमी का चेहरा झँवाकर काला पड़ जाता। पर डालिमी यह भेद कभी न पा सकी कि जंकी किसलिए और किस काम से यह आवा-जाई करता रहता है। जंकी के अंतर की एक भी बात डालिमी समझ नहीं सकी। पर इसका मतलब यह नहीं कि डालिमी ने जंकी के हृदय की थाह लेने में कोई त्रुटि की हो।

एक दिन जंकी नदी-घाट पर एक नाव के ऊपर उदास-उदास बैठा चुपचाप पानी को निहारता दोनों आँखों से धार-धार आँसू बहाये जा रहा था। गाँव की ओर से डालिमी काँख तले गगरी दाबे घाट पर आई और जंकी को पानी में टकटकी बाँधे देख लिया। डालिमी के जी में उन्मुक्त-स्वछंद मीरी-कुमारिका की स्वाभाविक आमोद-प्रियता खेल गई। उसकी तबियत ठिठोली करने की हुई। उसने काँख तले की गगरी धीरे से उतारकर नीचे रख दी और हाथों को फैलाये हुए चुपके से जंकी के पीछे जाकर झट उसकी आँखें मूँद लीं। जंकी उसके हाथ

टटोलने लगा, पर बहुत कोशिश करने पर भी पहचान नहीं सका कि वह कौन है। उसके हार मानने पर डालिमी ने खुद ही हाथ हटा लिये और ठहाका मारकर हँसने लगी। जंकी ने मुँह फिराकर देखा कि डालिमी है। डालिमी ने भी जंकी की आँखों में निहारा। आँखें चार हुईं। किंतु हाय! डालिमी को कैसा दर्दीला दृश्य देखना पड़ा! जंकी की दोनों आँखें गुड़हल[1] के फूल-सी लाल-लाल थीं और अभी-अभी आँसू बहे होने के धब्बे पड़े थे। उसके दुःख से दुखी होकर डालिमी ने पूछा :

"जंकी तू रो रहा था ?"

जंकी—"रोते कब देखा, डालिमी ?"

डालिमी—"हाय, तू झूठ क्यों बोलता है ? कह दे ना, रो क्यों रहा था ?"

जंकी—"कह तो नहीं सकूँगा मैं।"

डालिमी—"हाय, तू मुझ पर विश्वास नहीं करता। अच्छा तो ले, आज से मैं तेरे साथ बिहू नहीं नाचती। तेरे बुलाने पर भी नहीं जाऊँगी—"

जंकी—"डालिमी, बुरा मान गई ना ? मेरी बात जानकर तेरा कौन-सा लाभ हो जायगा ?"

डालिमी—"यों ही जान लूँगी। कह ना भला !"

जंकी—"कहते जी दुखता है। डालिमी तू तो जानती ही है कि मैं पहले सोवनशिरी के मीरी गाँव में था।"

डालिमी—"हाँ, सो तो जानती हूँ। फिर क्या हुआ ?"

जंकी—"वहाँ मुझे पानेइ नाम की एक युवती प्यार करती थी।"

जंकी के इस वाक्य के पूरा होते ही डालिमी का चेहरा थोड़ा-सा मुरझा गया। पर जंकी इसका भेद पा नहीं सका। फिर डालिमी ने ही पूछा, "फिर ?"

---

१. मूल : 'ओउ' (खट्टे उड़िया कईत्थी लिसोड़े) के फूल की तरह।—अनु०

जंकी—"फिर, वह मुझसे कहती थी कि वह मेरे ही पास आ रहेगी। उसने सौंह भी खाई थी। पर अब मुझे दीन-दुखिया जानकर, यह देखकर कि मेरा कोई नहीं है और मेरे कुछ नहीं है, उसके माँ-बाप ने कमुद नाम के एक और लड़के से दामादी खटवाना शुरू कर दिया है। कौन जाने, मेरे कपाल में तो शायद आग लग चुकी है।"

डालिमी—"वह यदि किसी और को अपना ले तो क्या तुझे कोई और नहीं मिलेगी ?"

जंकी—"उस-जैसी तो मुझे और कोई भी नहीं दीखती।"

जंकी ! सीधा-सूधा मीरी जवान ! क्या सर्वनाश कर डाला तू ने भी ! सरल प्राणों से तूने किसलिए अपने हृदय की यह गत बना ली है कि तू इतना भी नहीं समझ पाया कि तेरे इस एक शब्द ने किसी और एक व्यक्ति को कैसा मर्मभेदी दुःख दिया है या दे सकता है ! पर करे क्या ? तू ठहरा सीधा-सूधा मीरी जवान। संसार के शिक्षित मानवों की कृत्रिम भाषा का भेद तू नहीं जानता। तेरे सरल प्राणों को जो भी सही लगता है तू वही कह डालता है। जो हो, जो अनिष्ट तुझे करना था, सो तो तू कर गुज़रा। अब तो उसके निवारण का और कोई उपाय है भी नहीं।

जंकी के अंतिम वाक्य के पूरा हो लेने पर डालिमी ने कहा, "जंकी, मैं चलती हूँ—"

जंकी—"जा डालिमी, जा !"

पाठको ! अब यहाँ की बात यहीं रहने दें। चलिये उधर देखें कि पानेइ क्या कर रही है।

पानेइ के माँ-बाप ने तो ज़ोर-ज़बरदस्ती करके कमुद को दामादी खटाने के लिए रख लिया, पर पानेइ उस दामाद-बेटे की ओर रत्ती-

भर भी ध्यान नहीं देती। वह सदा उससे दूर-ही-दूर रहती है। इसका एक फल यह भी हुआ कि अनबोली पानेइ को भी झगड़ालू हो जाना पड़ा। माँ-बाप के साथ सदा उसकी ले-ले दे-दे लगी रहने लगी। माँ-बाप भी कभी गाली-गलौज तो कभी सिखावन-बुझावन में, और कभी-कभी सहेलियों-हमजोलियों के जरिये उसे सुध-बुध और आस-भरोस दिलाने में कुछ भी उठा नहीं धरते थे। पर मुँहमुँदी अहमक़ लड़की जिस बात के पीछे पड़ जाती है, पड़ जाती है ! माँ-बाप की एक भी कोशिश हमारी उस युवती के मन को फेरने में कामयाब न हुई। अकसर ऐसा होता कि माँ-बाप जान-बूझकर पानेइ और कमुद को अकेले-अकेले में साथ छोड़-छोड़ जाते। पानेइ के पास फटकने की बात तो दूर रहे, उससे बातें करने का साहस भी कमुद नहीं कर पाता। इस तरह चार-चार प्राणियों के सुख हवा हो गए। पानेइ की एकांत की इच्छा और चिरकुमारी रहना पड़े फिर भी कमुद के पास कभी न फटकने का निश्चय ज्यों-का-त्यों दृढ़ बना रहा, क्योंकि इसी कमुद ने उसके स्नेह के पात्र, उसके प्यार के स्वामी जंकी को बुरा-भला कहकर गाँव से खदेड़ दिया था। तिस पर एक बात और यह थी कि सोवनशिरी की रेती पर उसने कासिङ-कार्टोन को साखी बदकर यह प्रण किया था कि जाऊँगी तो जंकी के ही जाऊँगी, वरना किसी के भी नहीं। कमुद भी कोई हटने वाला बंदा नहीं था। उसके मन में यह भावना खेल रही थी कि एक युवती को भी वस में ला न सका तो मेरा जवान कहलाना व्यर्थ है। सारे हमजोली जवान हँसी उड़ायँगे। पानेइ के माँ-बाप का यह दृढ़ संकल्प था कि पानेइ को कमुद के ही जाना होगा। मीरी जाति सरल-मना होती है। एक ही चोट में काम निबटाने का उसका हठ अटल होता है। इसीलिए जिसके जी में जो-कुछ होता है, वह उससे जल्दी हिलने-डुलने को कदापि तैयार नहीं होता। पूरे चौदह ब्रह्मांडों की बातें कर आयँगे, पर घूम-फिरकर फिर वहीं अपने मूल उद्देश्य पर आ अड़ेंगे। पंचों का फ़ैसला सिर आँखों पर, पर पनाला यहीं बहेगा !

पाठक समझ सके होंगे कि कमुद के दामादी खटने की बात उसके लिए कितनी सुखकर साबित हुई होगी। वहाँ से निकलते ही गाँव की युवतियाँ उसे इस तरह घूरने लगतीं मानो वह कोई उजला कौआ हो! एक तो मीरी युवतियाँ 'ब्याहते' को उपयुक्त नाम देने में यों ही बड़ी पक्की और कुशल होती हैं। तिस पर तुर्रा यह कि कमुद पानेइ से किसी भी हिसाब से बीस नहीं पड़ता। उसके गाँव में निकलते ही पहले रकमी गाती है :

"ब्याहते से डरे मेरी बला चेनेङ ऐ
डरी तुझ पे वारी कहाँ मैं ?
मुँहजले का पूत कहाँट के का दुलारा
चेनेङ की दुलारी कहाँ मैं ?"

उधर किरमाय कहने लगती है :

"झाड़ दे रे बिन-रखवाले के बेर !
ऐसी दवाई जरा लाना चेनेङ ऐ
ब्याहते को कुएँ में ढकेर !'

युवतियों की यह ठिठोली और पानेइ का अदना मानकर अनादर करना इत्यादि कमुद को तनिक भी नहीं सुहाता। आखिर एक दिन एक साथी नौजवान के द्वारा उसने पानेइ के माँ-बाप को कहलवाया कि इस तरह की दामादी खटने से मेरा क्या होगा? अब रुपये-पैसे लौटा दें तो मैं सब छोड़-छाड़कर चलता बनूँ। बूढ़े-बूढ़ी तामेद निरमा ने यह बात सुनी तो उनके जी को बड़ी ठेस पहुँची और पानेइ को उधर अलग बुलाकर कहा :

"पानेइ देख, तू हमारी इकलौती बिटिया है, हमें ऐसे दुःख देना था तुझे?"

पानेइ—"मैं ही जैसे तुम्हें दुःख दे रही होऊँ? दुःख तो तुम्हीं मुझे दे रहे हो। मैं कभी भी कमुद के यहाँ नहीं जाऊँगी।"

तामेद—"फिर किसके जायगी?"

पानेइ—"अगर जंकी से ब्याह दो तो उसके साथ जाऊँगी। और उसे नहीं ब्याहना है तो मैं सदा घर में ही रहूँगी।"

तामेद—"उस भुक्खड़ कुत्ते के यहाँ जायगी जिसे टुकड़ा तक नसीब नहीं होता?"

पानेइ—"हाँ उसीके यहाँ।"

निरमा—"पानेइ, अब तुझे शाप दे दूँगी, हाँ। हम माँ-बाप हैं, हमारा जी दुखायगी तो तुझे कभी सुख नसीब न होगा।"

पानेइ—"मैंने कभी किसी का जी नहीं दुखाया।"

तामेद—"मैंने जाना कि मेरे कोई बेटी थी ही नहीं। इकलौती तू ही थी, सो अब यह जान लिया कि तू भी मर-मरा गई।"

पानेइ—"मैं जब मर ही गई तो अब क्या तुम फिर मेरी मरी लाश को बेचकर खाना चाह रहे हो?"

निरमा—"जल्द ही तेरा सत्यानाश हो जायगा।"

पानेइ—"कोस, कोस! जितना कोस सके, कोस ले! जो भाग में बदा होगा, वही होगा।"

तामेद—"चुप रह! आज ही रात को मैं तुझे बाँध-छाँदकर कमुद के हवाले कर देता हूँ। ज़बरदस्ती वह तेरा धरम बिगाड़ देगा तो तू आप ही जायगी।"

मीरी-चाङ तलमलाहट से फिर तले-ऊपर कँपकँपाने लगा। भोली होने पर भी ऐसे माँ-बाप की बे-कहन पानेइ सिसक-सिसक कर रोने लगी।

८

अँधेरी निशा

जिस दिन जंकी ने वह बात कही, उस दिन से डालिमी के दिल में एक बरछी-सी खुभी रहने लगी। उसने कभी भी ऐसा न सोचा था कि जंकी उसे ऐसी मर्मभेदी बात सुनायगा। उसने ऐसा कभी न सोचा था कि जंकी, उसे प्यार भले ही न करे, पर प्यार न करने पर भी यह समझाने की कोशिश करेगा कि तू देखने-सुनने में बुरी है। आज तक तो डालिमी अपने मन में यही सोचती आई थी कि मैं देखने में खासी अच्छी हूँ और अच्छा नाच लेना भी जानती हूँ। इन दोनों बातों का उसे थोड़ा-थोड़ा बालिका-सुलभ गर्व-गौरव भी था। पर वही डालिमी आज जंकी की ऐसी सीधी-सपाट बात सुनकर अपने-आपको संसार में अति नीच से भी नीचतम दरजे पर मानने लगी।

उसी दिन से डालिमी ने जंकी के साथ बिहू नाचना छोड़ दिया।

उसी दिन से डालिमी ने जंकी के साथ मन खोलकर बातें करना छोड़ दिया।

हाँ, इसका मतलब यह कदापि नहीं कि डालिमी ने जंकी को जानी दुश्मन मान लिया हो। नहीं, वह तो बल्कि उसकी सीधी बात से उसे दुश्मन समझने के बजाय एक खुले मन का आदमी समझने लगी। और जितना ही उसने यह समझा कि जंकी के हृदय पर किसी और ने अधिकार कर रखा है, कि उस स्थान को वह दखल नहीं कर पायगी, उतना ही उसका अपना सारा आस-भरोस हवा हो गया और वह जंकी के प्रति कुटुम्बी-भाव का त्याग करके निर्लेप बंधुत्व का भाव रखने लगी।

एक दिन मन-ही-मन ऐसी ही बातें सोचती हुई वह बैठी थी कि उधर से जंकी उसके घर की ओर आया। उस दिन डालिमी घर में अकेली ही थी। माँ-बाप आदि सभी जहाँ-तहाँ काम पर गये थे। जंकी धीरे-धीरे आकर उसके आँगन के आगे बैठ गया और डालिमी को देखकर पूछा, "डालिमी, तेरा बापा कहाँ गया है ?"

डालिमी ने जवाब दिया, "जंकी, वे तो आज घर पर नहीं हैं। साँझ पड़े आयँगे। बापा को किसलिए ढूँढ़ रहा है जंकी ?"

जंकी—"डालिमी! एक बात थी। कल मैं सोवनशिरी जाना चाह रहा था।"

डालिमी—"किसलिए जाना है ?"

जंकी—"डालिमी, तुझे तो मैंने अपनी सारी बातें बता दी हैं। अब एक उपकार मेरा तू करेगी ?"

डालिमी—"कौन-सा उपकार, जंकी ?"

जंकी—"तेरे बाप की तीन-चार नावें हैं। कल मैं सोवनशिरी जाना चाह रहा था, एक नाव चाहिए थी।"

डालिमी—"मुझे बताते क्यों नहीं कि नाव किसलिए चाहिए ?"

जंकी—"तुझसे मैं अपनी बहन-जैसा स्नेह करता हूँ। तेरे आगे मैं सारी बातखोल कर कह रहा हूँ, सुन !"

डालिमी—"क्या भला ?"

जंकी—"पानेइ के माँ-बाप उसे बरजोरी कमुद के हवाले करना चाहते हैं। उसने मेरे पास संदेशा पहुँचवाया है कि मैं उसे भगा लाऊँ। डालिमी, मेरी जान भी चली जाय तो मैं उसे छोड़ नहीं सकता। बापा को मैं खुद आकर कहूँगा। पर तू भी उनसे कहेगी ना कि नाव मुझे दे दें।"

डालिमी—(मुँह फेरकर) "अच्छा कहूँगी।"

जंकी— (डालिमी के हाथ पकड़कर) "डालिमी ! तू सचमुच मुझे बहन की तरह प्यार करती है। अच्छा, डालिमी अब चलता हूँ। हाँ ?"

डालिमी (मुँह फेरकर)—"जा जंकी !"

जंकी—"डालिमी ! यह ले, तू तो रोने लग गई। रो क्यों रही है, डालिमी ?"

डालिमी—"पानेइ के दुःख की बात सुनकर।"

यह सुनकर जंकी उठ गया। पर उसके हृदय में आज डालिमी की आँखों के आँसू देखकर थोड़ा-सा संदेह-भाव जगने लगा। पर जो भी हो, मन-ही-मन उसने यही सोचा कि डालिमी सचमुच बड़ी सहृदया है, कि डालिमी सचमुच उसकी बड़ी उपकारी बहन-सी है।

और डालिमी ? पाठको, डालिमी की प्रकृत अवस्था तो आप समझ ही सके हैं ना ? कि वह किसलिए रो रही थी ? उसने समझ लिया कि अब भी जंकी का प्यार दृढ़ रूप से पानेइ के प्रति सुरक्षित है। कि उस प्यार का कोई भी स्रोत किसी और की ओर नहीं बहता। इसीसे उसके हृदय में मर्मांतक वेदना हुई। उस वेदना को वह कोशिश

करके भी दबाये नहीं रख सकी। उसके हृदय का झरना आप-ही-आप फूट पड़ा और पानी की एक वेगवती धारा निकल पड़ी--डालिमी रो पड़ी। पर इतनी मर्मांतक वेदना पाकर भी उसने अपने प्रणय में स्वार्थ की भावना को नहीं पैठने दिया। उसने मन-ही-मन यही सोचा कि जंकी अगर नाव देने से ही सुखी होगा, तो वह जंकी के साथ एक ऐसा उपकार करके उसके प्यार का भाजन क्यों न हो ले? और न सही, अपने उपकारी के रूप में तो जंकी उसे अपने मन में स्थान देगा ही।

और पानेइ? पानेइ का उधर क्या हुआ? बाप उसे बरजोरी सौंपना चाह रहा था, पर ईश्वर की इच्छा ऐसी हुई कि जिस दिन वह काम कर डालने की उसने प्रतिज्ञा की थी, उस दिन वह काम सिद्ध नहीं हो सका। उसी दिन कमुद को किसी काम से पथालीपाम की ओर जाना पड़ गया था। इन दो दिनों के भीतर पानेइ ने यह पक्का निश्चय कर लिया कि माँ-बाप को अब त्याग दूँगी। उसने तय कर लिया था कि सहेलियों-हमजोलियों की निंदा का भाजन होना पड़े तो वह भी सही, पर अपने प्यारे के पास जाऊँगी ही जाऊँगी। उसने तय कर लिया था कि जंगली हाथी से नहीं डरूँगी, अरना भैंसे से नहीं डरूँगी, बनैले सूअर से नहीं डरूँगी, बाघ इत्यादि से नहीं डरूँगी, सब डर-भय त्यागकर भाग निकलूँगी!

सो, वह सुयोग उसे मिल गया। रकमी सहाय हुई और जंकी को सँदेशा भिजवा दिया गया। जंकी अँधेरी निशा में एक नाव लेकर घाट पर आन पहुँचा। पानेइ शौच के बहाने नदी पर जाकर नाव में जा बैठी। उसके बैठते ही नाव द्रुत वेग से सोवनशिरी माई की धार में, बलिष्ठ जंकी के चप्पुओं के ज़ोर से, रातों-रात बह चली। उसके लौटने में देर होती देखकर बूढ़े तामेद और बूढ़ी निरमा ने गाँव में निकलकर लोगों से पूछ-ताछ शुरू की। गाँव में हलचल मच गई। लोग चारों ओर ढूँढ़ने निकले। पर पानेइ का कहीं पता न चला।

९

जंगल के बीच

सोवनशिरी नदी के पार जंगल है। किनारे-ही-किनारे जंगल बड़ा घना और बीहड़ है। और तो और, उसमें से गुज़रना बड़ा कष्टकर है। उसी जंगल के बीच में एक कुटिया है। इस कुटिया के भीतर एक जोड़ा मानुष है। एक नर, एक मादा; अथवा एक युवक, एक युवती। पाठको, आपने पहचाना, ये कौन हैं? युवक जंकी है, युवती पानेइ है।

उस अँधेरी निशा में जंकी और पानेइ के नाव में बैठकर भागते ही तमाम मीरी चारों ओर फैलकर गाँव के आस-पास के तमाम कोनों-अँतरों में ढूँढ़ने लगे। रात बड़ी ही अँधियारी थी। इसीलिए थोड़ी देर की खोज-ढूँढ़ के बाद मीरी लौट गए। दूसरे दिन पौ फटते ही सोवनशिरी के मीरी-गाँव के मीरी फिर पूरब-पच्छिम उत्तर-दक्खिन चारों ओर पानेइ को ढूँढ़ने लगे। पानेइ और जंकी को पता चल गया कि नाव से

जाने में खतरा है। इसीलिए पौ फटते ही उन्होंने नाव को दोनों चप्पुओं के साथ सोवनशिरी में बहा दिया और आप जंगल में पैठ गये। अगला सारा दिन जंगल में बिताकर साँझ पड़ते ही घूणा सूँती के पास के जंगल में पहुँचकर बसेरा लिया। पहले से ही करके रखे गए बंदोबस्त के ज़रिये बहती हुई नाव को डालिमी के बाप ने पकड़कर रख लिया।

सोवनशिरी के मीरी लोगों ने और-और गाँवों के साथ घूणा-सूँती में भी पानेइ की खोज-ढूँढ़ की। पर कहीं भी कोई उन्हें पानेइ का पता न बता सका। पर एक बात वे स्थिर कर सके कि जंकी भी घूणा-सूँती गाँव में नहीं है। इसलिए तय यह पाया कि जंकी ने ही यह धोखा किया है। सात-आठ दिनों तक पता नहीं लग सकने पर उन्होंने पानेइ की आस छोड़ दी।

जंकी ने अपने उन जुटाये रुपयों और सहृदया डालिमी की सहायता से रोज़ साँझ-पहर गाँव से चावल, नमक, तेल, आदि मोल ला-लाकर जंगल के भीतर पानेइ के साथ एक महीना काट लिया। पानेइ और जंकी दोनों ने यही समझकर संतोष किया कि विधाता ने ही हम दोनों की जोड़ी बाँध दी है और हम भी वैसे कासिङ-कार्टीन को साखी बदकर प्रणय-प्रतिज्ञा में आबद्ध हैं ही। माँ-बाप के हाथों से सौंपी न जाने पर भी पानेइ यह पक्के तौर पर मानती थी कि जंकी ही मेरा सच्चा गिरस्त है, मेरा प्रकृत पति है। जंकी ही उसके सच्चे प्यार का पात्र था। इसीलिए पानेइ ने अपने सरल प्राणों और सीधे मन से जंकी को अपने हृदय में ठौर दिया। मेरी मुँहमुँदी-अनबोली मीरी बिटिया ने जंकी के चरणों में मन-प्राण अर्पित कर दिए।

इस तरह एक महीना बीत गया। जंकी-पानेइ ने सोचा कि अब उतरकर चाहे तो माजुली (टापू) के किसी मीरी गाँव में, और नहीं तो

खेरकटिया या माछखोवा के इलाके में जाकर लोगों से मिल-जुलकर बस लिया जाय। यही संकल्प करके एक दिन प्रेमी-प्रेमिका दोनों आग सेंकते बैठे थे और मिल-जुलकर भात पका रहे थे कि उधर जंगल के भीतर कुछ खड़खड़ाहट-सी सुनाई पड़ी। दोनों के मन में कुछ संदेह तो हुआ, पर जब तक वे चेतें-चेतें, तब तक धड़ाम से कोई पंदरह मीरी कमुद के साथ सामने आ खड़े हुए। बूढ़े तामेद ने फ़ौरन बेटी के हाथ पकड़ लिये और कमुद ने पानेइ के सामने पहुँचते ही जंकी को "कुत्ते ! बेशरम ! चोर !" आदि गालियों के साथ एक घूँसा दे मारा।

हमारा जंकी भी कोई कापुरुष नहीं। वह भी मीरी बच्चा है। वह भी बलिष्ठ है। आगा-पीछा सोचे बिना ही उसने सिंह-विक्रम से कमुद के गले को दबोच लिया। दोनों में धक्कामुक्की शुरू हो गई। जंकी ने कमुद को ज़ोर से पछाड़कर मिट्टी पर पटक मारा और उसकी छाती पर सवार होकर दो-तीन केहुनिया हूँड़े ही लगाये होंगे कि उधर से और और मीरियों ने आकर उसे पकड़कर अलग घसीट लिया और कोई तमाचे तो कोई घूँसे लगाने लगा। जंकी भी प्राणपण से जूझता जुटा रहा। पानेइ "हाय रे मार डाला चेनेङ को मार डाला," कहती हुई आप ही अपनी छाती घूँसे मार-मारकर पीटने लगी। उसकी चीख़ों से आसमान फटा जा रहा था। जोंक या यमकीट लगे होने की तरह वह अपने अंग-अंग को नोंचे जा रही थी। जो हो, जंकी को वे लोग अधिक मार-पीट नहीं पाये, क्योंकि मार-पीट चल ही रही थी कि उधर से डालिमी के बाप को अगुआन किये घूणा-सूँती के मीरी आन पहुँचे। डालिमी के बाप ने आते ही कहा, "यह मार-पीट क्या लगा रखी है ? कैसी बात कर रहे हो तुम लोग ? उस अनाथ लड़के को, जिसका कहीं कोई नहीं है और जिसके पास अपना कुछ भी नहीं है, अकेले पाकर तुमने बेरहमी से पीटना शुरू कर दिया है ! लेकिन यह भी सोचा है कि उससे बदला लेना कितना नावाजिब है ? अगर दोष हुआ है तो दस्तूर

के मुताबिक़ उस पर बाक़ायदा मुक़दमा करके निबटा लो । यह क्या कि आप ही मार-पीट करने बैठ गए ? किसलिए भला ?" डालिमी के बाप की इस बात पर मार-पीट बन्द हो गई । उसके बाद कमुद को पानेइ का हाथ पकड़कर घसीटते देखकर जंकी ने वज्र-गंभीर स्वर में ललकारा, "कमुद, अगर जीता रहना चाहता है तो मेरी पानेइ को हाथ मत लगा ! उसे पकड़ना ही है तो उसका बाप पकड़े ।" उसकी इस बात पर डालिमी के बाप ने भी अपनी सहमति प्रकट की । उसके बाद झुंड बाँधकर तमाम मीरी जंगल से निकलकर घूणा-सूँती के मीरी गाँव में आकर पंचायत में बैठे । डालिमी जंकी के गाल सूजे देखकर आँसू बहाने लगी । पर फ़ौरन ही उसे अपने कर्त्तव्य की याद आई और पानेइ को भीतर ले जाकर उसने कुछ खाने-पीने को दिया । घूणा-सूँती के मीरी-गाँव में तीन-ढोल-तिहत्तर-बोल वाली अव्यवस्थित गुलगपाड़िया पंचायत बैठी तो, लेकिन कोई फ़ैसला नहीं हो सका ।

१०

लखीमपुर शहर में

लखीमपुर शहर में सुबह के कोई आठ-नौ बजे थे। एकाध कारकुन सुबह-सुबह ही कचहरी आ गए थे। कई लोग दल बाँधकर डाकघर की ओर सुबह की चहलक़दमी करने गये थे। उधर कुछ लोग एक बाबू के घर बैठे बातें कर रहे थे और हँसी-ठट्ठे में सुबह बिता रहे थे। एकाध सज्जन कतिकी (कातिक माह की) साग-बाड़ी में पैठकर साग की निकौनी कर रहे थे। इसी तरह सुबह बीती और आठ-नौ बज गए। सभी ने हड़बड़ाकर झटपट नहा-धो लिया और दस बजते-बजते कचहरी जा पहुँचे। लखीमपुर कचहरी की इमारत छोटी-सी ही है, पर है साफ़-सुथरी और सजी-सजाई। कारकुनों के परिश्रम से चारों ओर सफ़ाई और सुथराई है। देखकर मन हर्षित हो जाता है। दस बजे। सभी अमला, सारे कारकुन, तमाम सरकारी नौकर-चाकर आ पहुँचे। धीरे-

धीरे सभी ने झुंड बाँध-बाँध लिये और जी भर-भरकर गप करने लगे। धीर-गंभीर प्रकृति के एक भद्र महाशय ने धीरे-धीरे और धीमे-धीमे सुर में कुछेक आमोद-जनक बातें छेड़ रखी थीं। साथ-साथ एकाध टुकड़ा पान-सुपारी भी देते जा रहे थे। यह भद्रजन अत्यंत सरल प्रकृति के हैं। सीधे-सादे आदमी हैं, बड़े दयालु और धर्मभीरु हैं। पकी उमर के हैं तो क्या, इनकी बातों का रस कभी नहीं चूकता, सदा अमिय वचन ही बोलते हैं। बीच-बीच में एकाध फुसकी कनबतियाँ बतिया लेना भी जानते हैं। उनके पीछे एक साहब ऐसे हैं जो कभी जाकर काम पर बैठते हैं तो कभी उठ आकर बीच में ही कोई बात टपकाकर हँस पड़ते हैं और कभी-कभी एकाध बातें हँसाने की भी कह जाते हैं। उनके बाद एक विद्वान् और वयोवृद्ध वकील साहब हैं, जो संस्कृत के एकाध 'सोलोख' (श्लोक) पढ़कर शास्त्रों की बातें छेड़े हुए हैं। नाना भाँति की पुरानी-पुरानी अच्छी-अच्छी बातें सुना रहे हैं। बीच-बीच में एकाध पान-सुपारी भी खाते जाते हैं। बस एक ही बूढ़े कर्मचारी ऐसे हैं, जो सिर झुकाये कुर्सी पर बैठे काम कर रहे हैं। उन्होंने ललाट पर सुन्दर-सुघड़-सा टीका लगा रखा है और गले में एक माला पहन रखी है। हाँ, कभी-कभी उन वकील महाशय की बातें भी सुन लेते हैं। मजलिस लगभग पूरी हो चली है। इतने में उधर से हमारे एक मुसलमान कर्मचारी निकल आते हैं। उनके पहुँचते ही इस सभा के मूल कर्त्ता-धर्त्ता—स्वामी—, जो भड़कीली देह-धजा के हैं, और उनके संतरी-मंतरी-स्वरूप एक और सज्जन, जिन्होंने कोट-पतलून पहन रखी है, एक-साथ बोल उठे, "आ भाई आ, तेरे न आने से हमारी मजलिस अधूरी रह गई थी।" उक्त मुसलमान कर्मचारी महाशय एक हल्की-सी मुसकान के साथ फ़ौरन बैठ गए। अब मजलिस पूरी हो गई। इस तरह कचहरी के बाहर किरानी-कर्मचारी थोड़ी-सी गप-शप करने लगे। लखीमपुर कचहरी के सभी किरानी-कर्मचारी सुखी हैं। उनके बीच आपस में ऐसा सद्भाव है

कि देखने पर जान पड़ता है कि असम में और कहीं भी न तो ऐसी प्रीति है और न ही ऐसा मेल-जोल है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इससे सरकारी काम में कोई व्याघात होता हो। बल्कि सरकारी काम का जैसा बढ़िया बंदोबस्त लखीमपुर में है, वैसा बहुत थोड़ी-सी ही और जगहों में होगा।

साढ़े बारह बजे। शहर के बड़े हाकिम, धर्म के अवतार-स्वरूप, न्याय के आगार-स्वरूप, मजिस्ट्रेट उपस्थित हुए। उनके इजलास पर बैठते ही सकल कर्मचारी-वर्ग, तमाम वकील-मुख़तार खड़े हो गए और नित्य के सधे सीधे-सरल नियम से उन्हें सलाम किया। सहृदय मजिस्ट्रेट साहब ने भी हँस-हँसकर एक साथ ही सबके सलाम स्वीकृत किये। पाठको, ऐसा हाकिम पाना बड़ा कठिन है। हाकिम के स्नेह से सभी लोग सचमुच ही संतुष्ट हैं। उनके हाथों से विचार का विभ्राट नहीं होता। वह किसी की भी कहीं से उठा-पटक नहीं करते। दुष्ट के यम, शांत के बंधु, दीन-दुखी प्रजावर्ग के मर्म को समझने वाले स्नेही, ज़िले भर के सभी कामों को अपनी आँखों के आगे रखने वाले, सभी काम आप अपने हाथों से करने वाले, ना, ऐसा हाकिम और कोई न होगा। इनके भय से सभी सचमुच काँपते भी रहते हैं। पर इसका मतलब यह नहीं कि दीन-दुखी कर्मचारी-वर्ग पर जुरमाने ठोकने में यह कोई ख़ास चोखे हों, नहीं, ये सभी के मर्म को समझते हैं। गुणियों के गुण को स्वीकार करते हैं। जो परिश्रम करता है, उसके काम को अपनी आँखों देखकर, उसे अपने निजी बाल-बच्चों की तरह मानकर स्नेह भी करते हैं। पहाड़ी दफला और मीरी समाजों की तमाम रीति-रस्में जानते हैं। देउरी, मीरी, दफला, आबर इत्यादि सभी जातियों के आचार-व्यवहार की जानकारी रखते हैं। पर इन हाकिम के इन आचरणों का कारण कुछ-कुछ उनके अपने गुण भले ही हों, पर अपने गुण इसमें कुछ-कुछ ही

कारणभूत हैं। कारण का अधिकांश तो लखीमपुर के सीधे-सपाट, सरल-मना लोगों में ही निहित है। ऐसा नहीं कि हमारे देश के हाकिम कोई बुरे हों ; पर जगह-जगह हमारे अपने ही लोगों के व्यवहार, हमारे अपने ही भाव-स्वभाव और चलन-चरित्र बहुत-सी जगहों में भले हाकिम को भी बुरा बना छोड़ते हैं।

हाकिम ने इजलास पर बैठते ही पहले मालियाती, दीवानी इत्यादि काग़ज़-पत्तर देख-सुनकर हुकुम सुना के निपटा लिये और फिर फ़ौजदारी काग़ज़-पत्तर देखना शुरू ही किया था कि इधर से कोई बीसेक मीरी मर्द कोई चार-पाँच युवती-बूढ़ी मीरी स्त्रियों के साथ कचहरी में हाज़िर हुए। उन मीरी युवतियों में एक ऐसी थी, जो चीख़-चीख़कर अपनी छाती मुक्कों से कूटती आ रही थी। एक आदमी उसे बरजोरी घसीटे लिये आ रहा था। कचहरी के कर्मचारी कुतूहलवश देखने लगे कि वह कोमल-वयसी छोकरी किस कारण से अपनी देह को इस बेदरदी से चोटें पहुँचा रही है! पहले एक बाबू ने पूछा, "तुम्हें क्या हुआ है?" इस पर एक और बाबू ने कहा, "ऐंऽऽ, यह युवती तो पिछले साल हमारे ज़िले में आके बिहू नाच गई थी शायद! है ना?" एक दूसरे बाबू ने कहा, "ओहो, और यह देखो ना, यह तो वही तुरही बजाने वाला मीरी है। तुम्हें क्या हुआ है?" मीरी लोगों ने एक-साथ ही कहा, "इसे फुसलाकर यह ले भागा था।" झट एक दूसरे ने बात काटी··· "वह आप ही गई थी।" पाठको, आपने पहचान लिया ना, कि ये कौन हैं? ये हैं कमुद, तामेद, जंकी, डालिमी का बाप, पानेङ, डालिमी आदि मीरी। आपस में इनकी पंचैती नहीं हो सकी तो ये कचहरी में आके हाज़िर हुए। कूट-बुद्धि अर्ज़ीनवीस की लिखावट के ज़ोर से जंकी के ऊपर अपहरण का मुक़दमा चला। हाकिम विचार करने लगे। पाठक, इनके ऊटपटाँग इजहार हुए, अपने-अपने मतलब की साखियाँ-गवाहियाँ हुईं। कोई भी

अपना हठ छोड़ने को तैयार न था। मैंने पहले ही कहा है कि मीरी जाति हठीली होती है। पेट में एक बात रखकर जवानी चौदहों ब्रह्मांड घूम आयगी, लाख हिलाने-डुलाने पर भी सच कहने को आगे नहीं आयगी। सभी अपने-अपने मूल उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही बातें करेंगे। इसीलिए कमुद-तामेद की ओर से चोरी, अगवा, फुसलाहट, भगोड़ेपन, इत्यादि इलज़ामों की झड़ी लगा दी गई। हाकिम इन ऊटपटाँग बातों से उलझन में पड़ गए। वह यह समझ पाने में अशक्त से हो उठे कि इनमें सच्ची बात कौन-सी है और झूठी कौन सी। आखिर छोरी के इज़हार के मुताबिक़ हाकिम ने एक तरह से जंकी के हस्बख़ाह ही हुकुम सुनाया। हुकुम हुआ, "मुक़दमा फ़ौजदारी में चल नहीं सकता। अपहरण का कोई सबूत नहीं है। दीवानी मुक़दमा चल सकता है और जब तक दीवानी से फ़ैसला न हो जाय, तब तक पानेइ बाप के पास ही रहेगी। जंकी या कमुद, या ख़ुद माँ-बाप भी उसे तंग नहीं कर सकेंगे।" पानेइ के माँ-बाप ने हाकिम के आगे दोस्ती का इज़हार करते हुए कहा, "हुज़ूर, हम पंचायत से निपटारा कर लेंगे।" बूढ़े तामेद ने पानेइ को हाथ पकड़कर घसीट लिया। वह रो-रोकर छाती पीटती चली। बाप रास्ते-भर गरजता रहा। कर्मचारियों में से दो-चार बाबू लोगों ने युवक के पक्ष में अपने मत प्रकट किये, "वे दोनों अच्छे मिले थे, माँ-बाप ने बेकार ही विघ्न डाल दिया है। उन्हें बीच में पड़ने का क्या काम था?" कुछेक बूढ़ों ने कहा, "मीरी अपने ही दस्तूर से काम करेंगे। माँ-बाप ने जिसे सौंप दिया, उसके जाना ही चाहिए था उसको।"

११

फिर सोवनशिरी के मीरी-गाँव में

हाकिम के हुकुम के मुताबिक़ मीरी लोग, जिसे जहाँ जाना था, चले गए। प्रेमी-प्रेमिका की जोड़ी बिछुड़ गई। जंकी मौसी के घर घूणा सूँती गया। पानेइ अपने मायके गई। एक बार फिर उन्हीं माँ-बाप के आश्रय में रहने लगी, जिन्होंने छुटपन से ही पाल-पोसकर उसे जवान किया था।

जिस दिन वह दुबारा लौटकर अपने घर गई, उस दिन उसकी पहले वाली सखी-सहेलियाँ उसके पास मिलने आईं। रकमी और भादै तो आकर उसके गले से लिपट गईं और कहने लगीं, "पानेइ, तू कहाँ जा छिपी थी, भाग क्यों गई थी ? हमें एकदम भूल गई थी ना ?" रकमी ने हँस-हँस कर बात छेड़ी, "पानेइ, तू तो कह रही थी कि किसी के नहीं जाऊँगी, अब जंकी के पास क्यों जंगल-जंगल भटककर पूरा

महीना गुज़ार आई ?"—इत्यादि बहुत-सारी भली-बुरी बातें उसके साथ बतराने लगीं। गाँव की बूढ़-पुरनिया आदर-पात्रियों ने कहा, "मैया मेरी, तू यह नटखटपना काहे को कर बैठी थी। माँ-बाप की बात काहे को टालने लगी थी ? उनसे भी कोई बे-कहन हुआ है कहीं ? हमारी मीरी बिटियाँ भी अब माँ-बाप की बात अनसुनी करने लगेंगी ! माई मेरी, तूने अकेले ही सबकी नाक कटा दी, सबको बिगाड़ दिया। माँ-बाप का जी दुखेगा। माँ, देख मेरी लाड़ली ऐ, अब भी माँ-बाप की बात सुन !"

पानेइ समझ गई कि मैं फिर यम-यंत्रणा में आ फँसी। उसने समझ लिया कि अब अपने प्रेम-पात्र जंकी के पास जाने का सपना व्यर्थ हो गया। माँ-बाप अब फिर मुझे कमुद के ही हवाले करेंगे। पर उसने फिर मन-ही-मन संकल्प किया कि **'बरौं संभु न तु रहौं कुँवारी !'** कि जाऊँगी तो जंकी के जाऊँगी, वरना सदा इसी घर में चिरकुमारी बनी रहकर क्वाँरा रँड़ापा काटूँगी। नहीं तो जहर-माहुर खाकर जान दे डालूँगी।

बूढ़े तामेद और बूढ़ी निरमा ने सोचा कि चूँकि मजिस्ट्रेट ने हुकुम दे दिया है, इसलिए कम-से-कम कुछ दिनों तक तो पानेइ को हलकान-परेशान करना ठीक नहीं है। दीवानी मामला-मुक़दमा करने की उनकी इच्छा तनिक भी नहीं थी। वे यह सोचकर चुप रहे कि कौन जाने अब भी छोरी का मन फिरे, कौन जाने शायद अब वह कमुद के पास जाने को तैयार हो जाय। पानेइ को मार-धाड़ या गाली-गलौज से तंग करना भी उन्होंने एक तरह से बंद-सा ही रखा।

उधर कमुद क्या कर रहा था ? कमुद पूरे युवक-समाज में लज्जित

और अपमानित हो चुका था। मन-ही-मन उसने सोचा कि न जाने कैसी कुलच्छन घड़ी में मैं दामादी खटने जा पहुँचा था ! ईश्वर ने मुझे जंकी-जैसा गुणवंत क्यों नहीं बनाया ! ईश्वर ने मुझे यों लज्जित क्यों करवाया ! यही सब सोच-सोचकर वह बेचैन रहा करता था। नमेन गाम ने प्रतिज्ञा की कि या तो मैं अपने रुपये वसूल लूँगा या फिर पानेइ को बहू बनाकर ही दम लूँगा। गाँव की युवतियों में से कितनी ही—बल्कि अधिकतर ही—पानेइ के पक्ष में हो गईं। वे उसके दुख से दुखी होतीं, उसके माँ-बाप की निंदा करतीं, उन्हें दूसतीं-कोसतीं। कितनी फिर पानेइ को भी दोष देतीं। मगर रुकमी ने कमुद पर बोली-ठोली कसना नहीं छोड़ा। उसे देखते ही वह गाने लगती :

"ब्याहते से डरे मेरी बला चेनेङ ऐ
डरी तुझ पे बारी कहाँ मैं !
मुँहजले का पूत कहाँ टके का दुलारा—
चेनेङ की दुलारी कहाँ मैं !"

और उधर जंकी क्या कर रहा था ? पाठको, आइये उसे भी एक बार देखते चलें। वह लौटकर घूणा सूँती गाँव को आया तो यही सोचने लगा कि विधना ने मेरे बदे में सुख लिखा ही नहीं। अब फिर पानेइ मुझे नहीं मिलने की ! दीवानी चली तो दो-तीन सौ रुपये लग जायँगे, कहाँ से दूँगा, इतने रुपये कहाँ पाऊँगा ? सोच-सोचकर वह बेचैन रहने लगा। पर यह सोचकर वह चुप साधे रहा कि पानेइ मुझे दिलो-जान से चाहती है और इस प्यार के लिए बड़े-से-बड़ा पुरुषार्थ करके भी वह मेरे पास आने की कोशिश करेगी। बस यही एक बात थी, जिससे वह अपने मन को समझाया करता था।

इधर डालिमी उसका यह हाल देखकर भीतर से दुखी थी। जंकी

को सुखी न देखकर उसके मन में थोड़ी-सी आशा भी जगने लगी थी। सोचती, कौन जाने शायद ईश्वर ने मेरे ही साथ उसकी जोड़ी बाँधी हो ! कौन जाने, शायद ईश्वर ने मेरे ही लिए जंकी को सिरजा हो। ऐसी ही ऐसी चिंताओं को वह उधेड़ती-बुनती रहती थी। एक दिन जंकी को अकेले में पाकर उसने कहा :

"जंकी, जिस समय घूरणा सूँती[1] के मीरी जंगल में जा रहे थे, उस समय मैंने उन्हें जाते देख लिया और बापा से जाकर कहा और बापा ने मेरी बात सुनते ही जहाँ-तहाँ घूम-फिरकर लोग बटोरे और लोगों को लेकर वहाँ गये !" उसकी इस बात पर जंकी ने सीधी-सी बात कही :

"डालिमी, तू नहीं जानती कि तूने मुझ पर कितना बड़ा उपकार किया है। तू नहीं जानती कि तेरा बापा जो पहुँचा न होता तो वे मुझे जान से ही मार चुके होते।" डालिमी जंकी की इस तरह की बातें सुन-सुनकर अंतःकरण से आनंदित हुई। इस तरह एक महीने का समय बीत गया।

इस एक महीने में पानेइ का मन फेरने के लिए तामेद और निरमा ने आप भी और पानेइ की हमजोली सहेलियों के जरिये भी उसे समझाने-बुझाने और सिखाने-सुझाने की कोई कोशिश उठा नहीं रखी। मगर हमारी चुपचुपी मीरी बिटिया का मन वे किसी भी तरह फेर नहीं सके। उसका संकल्प तिल-भर भी टस से मस नहीं हुआ।

---

१. नामों का यह हेर-फेर शायद प्रमादवश हो गया है। लेखक शायद 'सोवनशिरी' लिखना चाहते थे। —अनु०

निरमा बीच-बीच में पानेइ से कहा करती, "बाछा, देख ना, तुझे पाल-पोसके जवान किया। अब तू है कि हमारे जी दुखा रही है! कमुद के जा माँ, कमुद के जा! जा, मेरी लाड़ली!" बूढ़ा तामेद बीच-बीच में कहा करता, "पानेइ, तू निरी भोली है। तू कमुद के गुन नहीं जानती। बाछा मेरी, तुझे उसे सौंपता हूँ तो तू जा उसके। तू एक बार 'जाऊँगी' कह दे बाछा मेरी, तो मैं कल ही ब्याह रचा डालूँ।" पर पानेइ सारी बातों का बस एक ही बँधा-बँधाया जवाब देती। कहती, "माँ! बापा! मुझसे तुम्हारा जो कोई स्नेह है तो मुझे जंकी के हवाले कर दो! कमुद ने जो रुपये-पैसे खर्चे होंगे, उन्हें पाई-पाई चुका देगा जंकी। उसका अपना तो कोई है नहीं, बेटे की तरह तेरे घर खटकर तुम्हें अरज के खिलायगा भी। उसे नहीं सौंपते तो मैं सदा तुम्हारे ही घर रहूँगी। किसी के भी नहीं जाऊँगी। मुझे बेकार सताना मत, हाँ!"

पाठको, मैंने पहले ही कहा है कि मीरी हठीले होते हैं। कोई भी अपने हठ से डिगने का नाम नहीं लेता। इस हठीलेपन के पुण्य-प्रताप से हमारे इन स्वभाव से ही भोले मीरी लोगों के घरों में ऐसे-ऐसे दुख-भोग और ऐसी-ऐसी अशांतियाँ हुआ करती हैं, कि जिनका कोई लेखा-जोखा नहीं। फिर भी मीरी अपनी बात नहीं छोड़ते। अनेक युवक-युवतियों की ऐसी ही दशा होती है। जहाँ भी शुद्ध प्रणय होता है, वहाँ बस यही कांड होता रहता है। हाँ, अगर मीरी युवती असती होती है, अर्थात् जिसे न तो एक के साथ पहले साथ-बात कर लेने में आपत्ति होती है और न पीछे माँ-बाप किसी और को सौंप दें, तभी कोई उज्र-एतराज़ होता है, तो फिर ऐसे मामलों में मामला-मुक़दमा नहीं होता और सारी बात यों ही मिट-मिटा जाती है। बहुत कम ही, शायद ही, कभी ऐसा होता है कि युवती की पसंद और माँ-बाप की पसंद मेल खा जाय। जिसके साथ ऐसा होता है, मीरी जाति के युवक-युवती की वह जोड़ी तो स्वर्गिक सुख पा लेती है।

इस तरह असुख-अशांति में दिन बीतते गये। आखिर बूढ़े तामेद और बूढ़ी निरमा ने कमुद और उसके बाप की सलाह से पानेइ को बरजोरी हाथ-पैर बाँधकर बिना ब्याह के ही कमुद के घर ला पटकने की साज-बाज की। चौकस पानेइ को इसकी टोह मिल गई और वह फिर रातों-रात भाग खड़ी हुई।

१२

घूणा सूँतो गाँव मैं

"दाइन आ'यम माइ फ़ेथफुल फ़ेयर
दाइन माइ लवली नैंसी—
एवरी पल्स अलॉङ माइ वेन्स
एवरी रोविङ फ़ैंसी—
टु दाइ बूज़्म ले माइ हार्ट
देय्‌र टु थ्रॉब ऐंड लैंग्विश—
दो डिसपे'र हैड रंग इट्स् कोर
दैट उड हील इट्स् ऐंग्विश।"—रॉबर्ट-बर्न्स।[१]

---

[१] "मेरे प्रति सच्ची ओ रूपसि, मैं तेरा हूँ,
तेरा हूँ ओ मेरी प्यारी प्यारी गुड़िया—
मेरी नस-नस की एक-एक धड़कन तेरी

दूसरे दिन पौ फटते ही मीरी-गाँव में फिर हलचल मच गई। पानेइ फिर भाग गई थी। फिर चारों ओर लोग छूटे। पर पानेइ का कहीं भी पता न चला। उमर के छोटे लोग घूणा सूँती गये। जाकर सीधे जंकी की मौसी के घर पहुँचे। पर वहाँ जाकर देखते क्या हैं कि जंकी तो घर में ही मौजूद है। कई चक्कर लगाकर उन्होंने आखिर जंकी को ही पकड़ा। कहा, "तू ही सारे अनर्थ की जड़ है। बता, फिर पानेइ कहाँ भाग गई?" इस बात पर जंकी को बड़ा रोष हुआ। वह बोला, "तुम फिर-फिर मुझे ही क्यों पकड़ते हो? सभी अनर्थों की जड़ तो हैं पानेइ के माँ-बाप। इस बार मैं तो पूरे महीने से घर पर ही हूँ, कहीं आया-गया नहीं। पता नहीं, पानेइ कहाँ गई? अब मैं कैसे कहूँ? कौन जाने शायद वह माँ-बाप के दौरात्म्य की मारी कहीं विष तो नहीं खा मरी? अगर कहीं ऐसा हुआ तो इसके भागी उसके माँ-बाप होंगे।" इतना कहकर जंकी ने अपना सिर ठोक लिया और यह कहकर रोने लग पड़ा कि "मेरा यह कपाल! जानें, कैसी अलच्छन घड़ी में जन्मा था मैं!" जंकी की इस बात पर मीरी अचंभे में पड़ गए। गाँव के लोगों ने भी यही गवाही दी कि जंकी इस बार कहीं भी नहीं गया। दुखी मन से सोवनशिरी के मीरी लौट गये। धीरे-धीरे यह बात डालिमी के कानों तक पहुँची कि पानेइ फिर भाग गई है। डालिमी के हृदय में फिर दो तरह के भावों की रस्साकशी शुरू हो गई। उसने सोचा कि अब जंकी फिर जाकर अपनी प्रणयिनी को ढूँढ़ लायगा।

मेरा हर भाव-विलास, अजायब की पुड़िया—
सोने दे अपनी गोदी में मेरे दिल को
यह वहीं धड़कता रहे, छीजता रहे वहीं;
यद्यपि यह मसला हुआ हताशा के हाथों
इसकी मसोस की दवा वही है, और नहीं!"—अनु०

मीरी लोगों के चले जाने पर जंकी ने जाने क्या सोचकर अपने सारे रुपये-पैसे समेटे और घर से निकल पड़ा। जाने के पहले डालिमी से बातें कर लेना उचित समझकर उसके पास गया। उसके पहुँचते ही डालिमी ने पूछा, "जंकी, मैंने सुना कि पानेइ फिर भाग निकली है।" जंकी ने कहा, "हाँ, डालिमी ! तू जो कह रही है, मैंने भी वही सुना है।"

डालिमी—"अब तू क्या करेगा, जंकी ?"

जंकी—"डालिमी ! मैंने मन-ही-मन एक बात सोच ली है। उसे ढूँढ़ने जा रहा हूँ। ईश्वर ने मेरे भाग में बदा होगा तो इस बार ढूँढ़-ढाँढ़कर सीधे यहीं ले आऊँगा। और डालिमी ! (आँखें छलछलाकर) अगर उसे पा न सका, तो फिर लौटकर यहाँ नहीं आऊँगा। यह देश छोड़कर जहाँ कहीं भी रह लूँगा। नहीं तो कहीं-न-कहीं जाकर मर जाऊँगा।" जंकी की इस बात से डालिमी को मार्मिक वेदना हुई। उसने कहा, "अच्छा जंकी, ढूँढ़ने जा ! ईश्वर तुम्हें मिला देगा। और वह न मिली तो भी लौट आना ! जंकी, तू न होगा तो हमारा यह सारा गाँव सूना पड़ जायगा; जंकी, आ जाना ! जंकी, रह मत जाना, हाँ।"

जंकी—"डालिमी ! तुझे अपने दिल की सारी बात खोलकर बताये दे रहा हूँ, सुन ! कह नहीं सकता कि ईश्वर ने मेरे माथे में क्या लिख रखा है। छुटपन में ही माँ-बाप चल बसे। संसार में मेरा कोई भी नहीं है। एक पानेइ ने ही मुझे प्यार किया था। और डालिमी, तूने भी मुझे बहन का-सा स्नेह दिया है। मेरे चले जाने पर कभी-कभी आपस में खेल-कूद करते मौज मनाते हुए मुझे भी याद कर लिया करना ! भूल मत जाना ! डालिमी, आज इतने दिन हो गये। जाने कितनी बार तुम्हारे जी दुखाये होंगे, सब माफ़ कर देना ! लौटकर आ पाया

डालिमी, तो फिर तुम लोगों के साथ भाई-बहन की तरह फिरा करूँगा।"

डालिमी (आँखें छलछलाकर)—"जंकी! तू आज ऐसी बातें क्यों कर रहा है? जा, भली तरह पानेइ को लेकर कुशल-कुशल लौट आना!"

इस तरह दोनों ने संभाषण किया। उसके बाद जंकी चला गया। जंकी के पीठ फेरते ही प्रेम की पुतली मेरी यह मीरी बिटिया भी अन्तर से फूट-फूटकर रोने लगी। और उस दिन से वह बिलकुल गंभीर और उदास रहने लगी। उसकी आशालता जड़ से उखड़-सी गई थी।

इस बार पानेइ के भागने से उसके माँ-बाप सचमुच दुखी हुए। निरमा बूढ़े तामेद से कहने लगी, "तूने ही यह सब किया। मेरी बछिया के मन को नहीं समझा और धन के पीछे लट्टू हो गया! मेरी बाछी पानेइ कहाँ गई? बछिया री मेरी, लौट आ! इस बार तुझे कभी नहीं सताऊँगी। इस बार तुझे तेरे हृदय-धन तेरे चेनेङ को ही सौंपूँगी। तेरे चेनेङ के पास पहुँचा दूँगी। पानेइ बाछी, कहाँ है तू? आ जा!" बूढ़े तामेद के सिल-जैसे दिल में भी इस बार दुख की पसीज आ गई। उसने भी अंतर से यह प्रतिज्ञा की कि पानेइ मिल गई तो उसे जंकी को ही सौंपूँगा।"

दो-तीन दिनों के बाद जंकी सारी लाज, सारे अपमान को हटाकर बूढ़े तामेद-निरमा के घर आया। बूढ़ी-बूढ़े को नम्रता से प्रणाम करके कहा, "बापा, मैं दोषी नहीं हूँ। तेरी बिटिया ने भी छुटपन से ही मुझे प्यार किया। उसे यदि मेरे पास पहुँचा दिया होता तो वह सुख में ही रहती।"

तामेद—"जंकी, मेरा मन तो यों ही बेजार है, तिस पर तू और सताने काहे को आ गया ? उसे कहीं छिपा रखा है तो ले आ, मैं तेरे आगे कासिङ-कार्टोन की साखी बदकर सौंह लेता हूँ कि उसे तुझे ही दूँगा।"

निरमा—"हाँ बापा ! कहाँ रखा है मेरी बछिया को, जा ले आ ! तुझको ही सौंपूँगी उसे।" तामेद और निरमा की बात से जंकी खुश हुआ। सोचने लगा, शायद ईश्वर प्रसन्न हो गया मुझ पर। कहा, "माँ-बापू, इस बार मैंने नहीं भगाया पानेइ को। कहीं होगी तो ढूँढ़कर मैं तुम्हारे पास ला दूँगा। मुझे सौंपना हो सौंपना, न सौंपना हो मत सौंपना। और बापू, अगर वह कहीं भी न मिली, अगर कहीं वह मर गई हो तो निश्चय जानना कि जंकी भी अपने नाम का दिया बुझा गया। जब तक उसे पा नहीं लेता तब तक हर ज्वार-भाटे में ढूँढ़ता रहूँगा।" इतना कहकर मन में दृढ़ संकल्प करता हुआ जंकी पथाली-पाम की ओर मुँह करके रवाना हो गया।

१२

पानेइ

उस रात घर से भागकर पानेइ गाँव के उस ओर के जंगल में रही। भोर होते ही जंगल पार करती हुई उत्तर की ओर चली! बाघ-भालू आदि के डर से वह अटक-अटककर दौड़ती हुई चली। यह तो उसने सोचा ही नहीं कि कहाँ जाना है और क्या करना है? फिर भी वह चलती ही रही। इसी तरह तीन संझा के उपवास के बाद वह झुटपुटे के समय एक हिंदू गाँव के पास पहुँची। वहीं जंगल से निकलकर वह गाँव में एक आदमी के घर गई और आतुर स्वरों में बूँद-भर पानी माँगा। पानी पीकर रात वहीं गुज़ारने की इच्छा प्रकट की।

जिस आदमी के घर पानेइ गई थी, वही गाँव का सबसे मालदार आदमी था। उस घर में दो-तीन जवान थे। जवान कुछ-कुछ लिखना-

पढ़ना भी जानते थे। एक ने छात्र-वृत्ति परीक्षा भी पास की थी। यह जवान कोई पच्चीसेक बरस का था। पानेइ को उसने देखा। देखा कि यह मिरियनी होते हुए भी सुन्दरी है। इसीसे उसकी इच्छा यह जानने की हुई कि यह कौन है, कहाँ की है, कहाँ से आ रही है, इस तरह जंगल-जंगल क्यों फिर रही है आदि।

जवान एकदम गँवई गँवार ही नहीं था। उसके पैर में सदा जूते रहते थे। सिर भी सदा भली तरह ऊँछा चिकना-चुपड़ा रहता था। इनके साथ ही उसके बदन पर बाबूगिरी की और-और निशानियाँ भी थीं। गाँव में रहते हुए भी उसने विलायती सुरा का सेवन तक सीख लिया था। और तो और, सभ्य समाज में जगह-जगह उसकी गिनती भी होने लगी थी।

पानेइ को पानी-वानी पिलाकर थोड़ा ठण्डा कर लेने के बाद, अँधेरा कुछ बढ़ लेने पर, वह जवान धीरे-धीरे हाथ में एक बोतल और एक गिलास लेकर दालान में आ बैठा और नौकर से तम्बाकू माँगा। नौकर तम्बाकू दे गया। फिर उसने तम्बाकू पीते हुए पानेइ से पूछा, "तू दम्पात[१] करती है ना ?"

पानेइ—"पीती हूँ।"

इस पर युवक ने आग्रह-पूर्वक चिलम पानेइ को थमा दी। पानेइ भी तम्बाकू पीने लगी। तब युवक ने बोतल से गिलास में सुरा ढालकर फिर पूछा, "तू आपङ[२] करती है ना ?"

१. तम्बाकू पीती है न ?
२. दारू का सेवन।

पानेइ ने मन-ही-मन में सोचा कि तीन दिनों की भूखी हूँ, माँदगी से रग-रग टूट रही है। सादा खा-पीकर बूँद-भर 'आपङ' ले लेने से सूखे गले में थोड़ा रस आ जाता है, माँदगी से चूर देह में थोड़ा बल आ जाता है। यही सब सोच-साचकर उसने इच्छा प्रकट की। फिर तो हमारे युवक ने गिलास-पर-गिलास भर-भरकर पानेइ को दारू देने का और आप भी पीने का पूरा एक सिलसिला ही बाँध दिया। तीन-चार गिलास दारू पेट में डाल लेने के बाद भी पानेइ कोई बेचैन, मदहोश या मतवाली नहीं हुई। पर युवक तो नितांत ही अस्थिर हो उठा। नशे में उसका पहला भाव यही हुआ कि पानेइ युवती है। फिर वह धुँधली-धुँधली आँखों से पानेइ को निहारने लगा। देखा, पानेइ सुन्दरी है ! फिर वह कहने लगा :

"देखने में तो तू बड़ी भली है ओ !"

पानेइ—"कौन जाने ? ऊँ तो ऊँगी (हूँ तो हूँगी।)

युवक—"ऊँ और नईं ऊँ क्यों ?"

पानेइ—"ऊँ ईं तो क्या उआ ?"

युवक—"कुछ नईं उआ ! तेरा नाम क्या ऐ ?"

पानेइ—"पानेइ।"

युवक—"ओ, तेरा नाम बी अच्चा ऐ !"

पानेइ—"आँ, मेरा सब-कुच अच्चा ऐ !"

बस ! युवक तो इतनी ही बात पर उतावला हो उठा। पाठको, कहने में तो लाज लगती है, युवक ने अत्याचार करने की नीयत से पानेइ को झुकाने के लिए खींचा-तानी शुरू कर दी। पर धन्य मेरी मीरी बिटिया का बल ! उसे वह जीत नहीं सका। उसके सतीत्व को नष्ट करने में वह असफल रहा। इस पर अत्यन्त निराश मन से उसने पानेइ से कहा :

"पानेइ मैंने बउत बुरा पाया।"

पानेइ—"चि:, तू ऐसी शरम लगने वाली बात करता है। यह पाप है।"

युवक—"तुजे पाने को मैं सबी पाप कर सकता ऊँ, नरक में जाना ओ तो जाऊँगा। पर पानेइ, तू मेरी आस वंग न कर।"

पानेइ—"चि: बला लोग ओके मुज मिरियनी पर आँकें लगाता है। मैं तो तेरी बेटी-जैसी बी नईं ऊँ!"

युवक—"पानेइ अगर तू बेटी बी ओती तो मैं तुझे नईं चोड़ता। पानेइ, मेरे प्राण शीतल कर!"

इतना कहकर युवक ने फिर झपट्टा मारकर पानेइ को पकड़ लिया। पर धन्य मीरी बिटिया मेरी! वह लक्ष्य-भ्रष्ट नहीं हो सकी। अपने सतीत्व की रक्षा भी कर ली और चीखी-चिल्लाई भी नहीं। युवक को पूरा थका मारने के बाद उसने कहा :

"देखता नहीं? कितना दुख पाके मैं माँ-बाप तक को छोड़ भागी हूँ। यहाँ इतनी रात को तेरे घर आई कि शायद इस दुख के संसार में भी यहाँ रात की दो-चार घड़ियाँ सुस्ताने में बिता सकूँ। पर तू मेरा आश्रयदाता होके भी मुझ पर अन्याय करने की सोच बैठा! अब भले ही मुझे बाघ खा जाय, रीछ खा जाय, पर यहाँ से तो मैं यह लो, चली!" और इतना कहकर वह उछली और उछलकर निकल भागी।

पाठको! मेरा यह युवक भी कोई नितांत हृदयहीन नहीं था। उसका नशा टूटा तो पानेइ की अंतिम तेजोमयी बातों ने उसके ज्ञान-चक्षु खोल दिये। वह समझ गया कि मैंने सचमुच ही बड़ा गर्हित काम किया है। मन-ही-मन दुखी होकर उसने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि ऐसा काम फिर कभी नहीं करूँगा।

दुखी मन से वह पानेइ को पुकारने लगा : "पानेइ, मत जा ! आज रात खा-पीके यहीं रह जा ! तुझे फिर नहीं सताऊँगा। जैसे भी बन पड़ेगा, तेरी सहायता ही करूँगा।"

युवक की इस बात पर पानेइ लौटी। उसने दिल से उस युवक को सराहा। रात को उसीके घर खा-पीके पड़ रही। पर भोर होते-न-होते वह उसका घर छोड़कर फिर जंगल में भाग गई।

१४

जंकी

आज चार दिन हो गए, जंकी ने पानेइ को ढूँढ़ने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। दिन-रात भूखा-प्यासा जंगल-जंगल, गाँव-गाँव और पाँतर-पाँतर भटकता उसे ढूँढ़ता रहा है। फिर भी कहीं भी उसका पता नहीं चल पाया है। कभी-कभी वह जंगल में पहुँचकर यह सोचने लगता है कि अब अपने प्राण त्याग देना ही अच्छा होगा। पर फिर, मरने की इच्छा नहीं होती; सोचता है कि एक बार यह पता लगा लेना उचित है कि पानेइ का क्या हुआ। यही उधेड़-बुन हर घड़ी लगी रहती है।

यही सब सोचते-सोचते आखिर वह, न जाने किस चुम्बक[१]-शक्ति के वशीभूत होकर ठीक उसी आदमी के घर पहुँचा, जिसके घर उस

१. मूल : 'बिजली की शक्ति'।—अनु०

रात पानेइ रही थी। जाते ही उसे समाचार मिला कि जैसी युवती का विवरण वह दे रहा है, वैसी ही एक युवती उसके आने के दो दिन पहले वहाँ आई थी। रात को उन्हीं सज्जन के घर टिकी थी। पर उस घर वाले यह नहीं बता सके कि उसके बाद वह कहाँ चली गई। उनकी इस बात से पानेइ के मिल जाने की जंकी की आशा थोड़ी बलवती हो उठी। रात को वह भी उसी आदमी के घर में रुक रहा और भोर होते ही उत्तर की ओर झेबेलीचुक[1] को रवाना हो गया। गोगा-मुख जाने की सोचकर वह झेबेलीचुक के जंगल में पैठ ही रहा था कि न जाने कैसे और कहाँ से पाँच गाछी-मीरी टपक पड़े और उसे घेर लिया। मुँह में डाट लगाकर और कमर में रस्सी बाँधकर घसीट ले चले। दिन-भर वे जंगल के भीतर-ही-भीतर एक सँकरे चक्करदार रस्ते से घसीटे लिये चले। पाठको, इस बार उसके मन पर जो बीत रही थी, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। उसने सोचा कि न जाने मैंने कौन-सा पाप किया है कि ये पहाड़ी गाछी-मीरी मुझे इस तरह घसीटे लिये जा रहे हैं। रात हुई। गाछी-मीरी रात-भर के लिए एक पेड़ तले टिक गए। रात-भर वे उसे घेरे पहरा देते रहे। उसके पास जो रुपये-पैसे थे, उनको भी उन्होंने हड़प लिया।

दूसरे दिन गाछी-मीरी उसे पहाड़ के ऊपर ले गए। बड़ी बीहड़ राहों से ले गए थे। जगह-जगह अनगिनत झरने बेंत के पुल बना-बना-कर पार कराये। पहाड़ के ऊपर पहुँचकर ऊपर-ही-ऊपर पच्छिम की ओर ले गए। इस तरह तीन दिन तीन रात भूखों रखकर चौथे दिन पहाड़ के ऊपर एक गाँव में पहुँचाया। अनुमान से वह समझ गया कि यही गाछी-मीरी लोगों का देश है। वहाँ पहुँचकर उन पाँचों ने जंकी के हाथ खोल दिए। इसके बाद उनमें से एक उसे हाथ के

१. लखीमपुर के बरदलनी मौजे के उत्तर में इस नाम की एक जगह है।

इशारे से एक घर में ले गया। प्राणों के संकट की आशंका से वह चुपचाप उसके पीछे-पीछे चला गया। उस पहाड़ी मीरी ने उसे अपने चाङ-घर में ले जाकर 'बिरिङ-बाराङ'[1] बोली में अपने घर के, और-और लोगों से न जाने क्या-क्या बातें कहीं और फिर उसे इशारे से बैठने को कहा। वह बैठ गया। उसके बाद उसके आगे कुछेक उबले हुए आलू-कच्चू सूखे हुए माँस के साथ परोस दिये गए। मन के अत्यन्त दुखी होने पर भी पेट की जलन से बेचैन होकर उसने थोड़े-से आलू-कच्चू खा लिए। सारी रात उसकी आँखें झपक नहीं पाईं। वह अपनी पहली अवस्था और अब की अवस्था पर विचार करता जगा पड़ा रहा। सोचता रहा कि भाग कैसे खोटे हैं कि इन पहाड़ी मीरियों के देश में ला पटका। साथ-साथ उसे यह चिंता भी खाये डाल रही थी कि न जाने पानेइ किस हाल में होगी। यही सब सोच-सोचकर वह अकुलाता रहा। कभी-कभी सोचता कि मर जाना ही अच्छा है; पर यह जाने बिना कि पानेइ का आखिर क्या हुआ, मरने की इच्छा भी उसे नहीं हुई। अभागा मीरी युवक रो-रोकर छटपटाता पड़ा रहा। मन-ही-मन सोचा कि सुयोग मिलते ही भाग निकलूँगा।

दूसरे दिन भोर हुई। उस पहाड़ी मीरी के घर वालों ने उसके कपड़े-लत्ते उतरवा लिए और अपनी ही तरह के पहनावे अर्थात् एक बेंत की टोपी, बेंत की ही एक कोधारी[2] और माथे के लिए बाँस की एक नुकीली काठी, पहनने को दी। सिर-माथा पीट-पाटकर उसने भी ये पहनावे पहन लिये। तब कहीं वह और-और बातों से यह समझ पाया कि उस मीरी-घर में मैं इनका बंदी या दास बना लिया गया हूँ। इसी तरह चार महीने बीत गये। सिर-माथा कूट-पीटकर वह पहाड़ी मीरियों की दासता में दिन काटता रहा, पर उनकी

१. समझ में न आ सकने वाली।—अनु०
२. गेंडुली, जिसे चूतड़ों पर बाँधते हैं।—अनु०

निगाहों से बचकर भाग निकलने की सुविधा उसे फिर भी मिल नहीं सकी।

इस तरह गाछी-मीरी का भेस धरे जंकी एक दिन पहाड़ के ऊपर अपने गिरस्त के घर के लोगों के साथ आलू का खेत गैंती से गोड़ रहा था कि देखता क्या है कि उधर से कुछेक मीरी तीन-चार मिरियनियों को क़ैद किये लिये आ रहे हैं। देखते ही वह समझ गया कि इन मिरियनियों को वे किसी और पहाड़ी मीरी-गाँव में डाका डाल-कर या चोरी करके लिये आ रहे हैं। उसे थोड़ा कुतूहल हुआ और जिज्ञासावश वह उन्हें देखने लगा। देखता क्या है कि उन पहाड़ी मिरियनियों के भीतर उसकी अपनी पानेइ भी है। उसे जितना हर्ष हुआ, उतना ही विषाद भी हुआ। जिस पानेइ को वह मैदानों में सुन्दर-सुन्दर चिकने-चिकने मूँगिया-रेशमी 'रिहा-मेखेला' में सुसज्जित देखकर आँखें तृप्त किया करता था, उसी पानेइ के शरीर पर आज गाछी-मिरियनी के पहनावे हैं! गले में पहाड़ी गहनों की कई लड़ियाँ हैं और कमर में मुश्किल से कोई हाथ-भर चौड़ा कपड़ा। पानेइ भी जंकी को इस तरह गाछी-मीरी के पहनावे पहने देखकर मन-ही-मन बहुत ही दुखी हुई। उसकी आँखों से आप-ही-आप आँसू बह चले। पर जो भी हो, आँखें चार होने से दोनों के मन में थोड़ा आनन्द भी संचरित हुआ। जंकी पानेइ से बोलने-बोलने को हुआ। उसका अंदाज़ देखकर चतुर पानेइ ने आँखों के संकेत से उसे मना कर दिया। वह भी चुप रह गया। पर सावधान निगाहों से देखता रहा कि वह किधर जाती है। जब उसने देखा कि वह भी उसी गाँव में आई है और सदा वहीं रखी जाने वाली है, तो उसका जी खिल उठा। मन-ही-मन उसने सोचा कि इतने दिनों बाद ईश्वर हमारे ऊपर शायद प्रसन्न हो उठा है। वह अन्तःकरण से उस अनजाने

जन को धन्यवाद देने लगा। पर पानेइ के साथ बातें करने की कोई सुविधा फिर भी निकाल नहीं सका। जो भी हो, उसने और पानेइ ने जब-तब एक-दूसरे को देख लेने की कोई भी सुविधा हाथ से न जाने दी, और न ही कोई कोशिश उठा रखी मिलने-जुलने की।

१५

छिन भर चिटकी लौ

इस तरह पहाड़ के ऊपर प्रेमियों की उस जोड़ी के दो महीने बीत गये। इस दो महीने के समय के बाद कहीं जंकी को पानेइ के साथ बातें करने का मौक़ा मिल पाया एक दिन। पानेइ ने उससे कहा : "जंकी भेबेलीचुक से मुझे चीली-मीरी पकड़ ले गए। चार महीने मैं उन चीली मीरियों के देश में रही। उसके बाद इन लोगों ने उस आदमी को मार-काटकर, जिसके घर में मैं थी, मुझे बन्दी बना लिया। तू यहाँ कैसे पहुँचा ?"

इस पर जंकी ने कहा : "पानेइ, तुझे ढूँढ़ता-भटकता फिर रहा था कि ये गाछी मीरी मुझे पकड़ ले आए। अच्छा, क्या यहाँ से भाग निकलने का कोई उपाय नहीं कर सकते हम लोग ?"

पानेइ ने कहा, "ये गाछी मीरी तो सदा ही मुझ पर निगरानी रखे रहते हैं। भाग निकलना बड़ा ही कठिन है। जो हो, किसी दिन रात के समय किसी उपाय से चुपके-चुपके तू आ जाना मेरे पास। दीवार पर आधी टिकटिकी हाथ की और आधी पाँव की मारना। मैं उतर आऊँगी। दोनों भाग चलेंगे।"

बस, यही इतनी-सी बात इन दो महीनों में पानेइ के साथ जंकी कर पाया था। हाँ, भागने के इशारे आँखों-ही-आँखों में दोनों ने कोई कम नहीं किये थे। दोनों की एक-जैसी ही अवस्था थी। दोनों को पहाड़ी मीरियों ने क़ैद कर रखा था। इस दो महीने के समय में एक बात और हो चुकी थी। पानेइ जिस घर में थी, उस घर के रेबाङ नाम के एक नौजवान ने अपने पहाड़ी दस्तूर के मुताबिक़ पानेइ के प्रति अपना प्रणय भी निवेदित किया था और उसे अपनी घरनी बनाने का विचार प्रकट किया था। पर मेरी चतुर मीरी बिटिया ने इस बार भी बहुत-बहुत सूझ-बूझ और कौशल के साथ अपने सतीत्व की रक्षा कर ली थी।

एक रात की बात है। पानेइ यों ही सोती-सोती अपनी दशा गुन-धुन रही थी। माँ-बाप की याद आई तो मेरी भोली मीरी बिटिया की आँखों से धार-धार आँसू बह चले। रोते-रोते सिरहाना भीग गया। फिर निद्रा देवी ने धीरे से आकर उसकी आँखों पर हाथ फेर दिये। आँखें मूँदते ही उसने एक सपना देखा। देखती क्या है कि वह अपने 'चेनेङ' के हाथों में हाथ डाले सँग-सँग डोलती फिर रही है। देखती क्या है कि फिर अपने चेनेङ के साथ 'आहू' धान की रख-वाली कर रही है, सँग-सँग नाव खे रही है, सँग-सँग बिहू नाच रही है। इतने में ही मानो अपने गाँव के एक बहुत ही बूढ़े मीरी ने दोनों

को बुलाकर अपनी गोद में बिठा लिया, और दोनों के मुँह खूब ज़ोर से चूमकर कहा : "मेरे बछड़ो, तुम दोनों ने बहुत दुख झेले। मेरे बछड़ो, अब तुम्हें फिर बिछड़ना नहीं पड़ेगा। अब तुम्हारे सभी दुखों का अंत आ गया" इतना कहकर उस मर्मी बूढ़े ने फिर दोनों को दो बार चूमा। वह भी अपने चेनेङ को अपने पास पाकर महा आनंदित हुई। इतने में मानो उधर से कोई बहुत ही सुन्दर विहू-नाच नाचता आया। ऐसे ही सपने वह देख रही थी कि उसकी चेतना लौटने लगी। जगकर आँखें मलते हुए देखा कि चेनेङ पास बैठा है। गले से लिपटती हुई फुसफुसाकर बोली, " जंकी कैसे आया ?" जंकी ने कहा, "जिसके घर में हूँ, उसके सो जाने पर मैं दबे पाँवों दबे हाथों चुपके-चुपके निकल आया। पानेइ, मेरी कनेङ, यहाँ से किसी तरह भाग निकलते तो फिर क्या बात है ? वहाँ मैं तेरे माँ-बाप से मिला था। उन्होंने सौगंध खाई है कि इस बार तुझे ले जाऊँ तो वे हम दोनों का ब्याह कर देंगे। तेरा बाप मुझे दामादी पर रख लेगा। मुझे बेटा बना लेगा, ऐ मेरी लाहरी ! चल पहले भाग लें, फिर पीछे और बातें होती रहेंगी। बहुत बातें कर सकेंगे फिर तो।" पानेइ जंकी की इस बात पर फिर रोने लगी। मन-ही-मन सोचा कि कैसा अन्याय किया मैंने। भागकर अगर धूणासूँती की ओर जाके जंकी के पास पहुँची होती तो अब तक माँ-बाप जाने कब के माफ़ कर चुके होते और जंकी के साथ ब्याह चुके होते। जो हो, अब और रोने का भी समय नहीं है। झटपट भाग निकलने में ही कुशल है। यही सोचकर वह मुँह और आँख पोंछती हुई बिस्तरे के ऊपर से अपनी देह को उठाने की सोच ही रही थी, और जंकी खड़ा होकर इधर-उधर ताक-झाँक कर ही रहा था, कि इतने में न जाने कहाँ से पल-भर में अंदर बेराङ, केदिङ, तामेङ और लाइपू ये चार पहाड़ी मीरी आ धमके और आते ही दोनों को घेरकर पकड़ लिया और पकड़कर हाथ-पैर बाँध दिये। पानेइ

और जंकी दोनों माथे कूटकर रह गए। उनकी चीखों से आसमान फटने-सा लगा। पहाड़ी मीरियों ने उनके हाथ-पैर अच्छी तरह जकड़ कर बाँध-छाँदकर उन्हें वहीं डाल दिया। हे जगदीश्वर! हे प्रभो! हमारे इस भोले-भाले मीरी युवक और इस भोली-भाली मीरी युवती ने तुम्हारे चरणों में कौन-सा पाप किया था! उन्होंने इतने कष्ट किसलिए पाये! जगदीश्वर! तुमने तो उन्हें सुख की राह पर लग-भग लगा ही छोड़ा था, फिर हठात् यह विसंगति क्यों घटित कर डाली? प्रभो! तेरी महिमा को समझना बड़ा ही कठिन है।

१६

बारह गाँव की पंचायत

आज पहाड़ी मीरी गाँव में बड़ी पंचायत है। गाछी बस्तियों के कोई तीन कोड़ी लोग जुटे हैं। सिर पर बेंत की टोपी, कमर में बेंत की 'कोधारी', हाथ में खुकरी कटार, मुँह में बाँस, पीतल अथवा कँसकुट मिली धातु की तंबाकू पीने की नली—बस यही है उनकी धजा। ये असभ्य मीरी उस नली-चिलम में जाने कितने ही प्रकार के पेड़ों के पत्ते भरकर उसमें आग लगाकर कश लगाते रहते हैं। दो सूअर लाये गये और दो बरछे उनके मल-द्वार से घुसाकर मुँह से निकालते हुए उनका वध किया गया। इसके बाद पूरे-के-पूरे सूअर आग में सेंक दिये गए और लहू बहना तक बंद नहीं होने पाया था कि टुकड़े-टुकड़े काट-काटकर पंच लोग उन्हें खाने लग पड़े। राक्षसों का पेट भरा। इसके बाद वे साक्षात् बनैले 'पहू'[1] की तरह हाथ अँकवारे टाँगें पसारे बैठ गए।

१. (संस्कृत 'पशु' से तद्भव) हिरन की कई जातियों के जंतु; हिरना पहू, तीर पहू, सूअरी पहू इत्यादि चौपाये।

आज उनकी बड़ी पंचायत है। 'बारह-गाँव' के गाछी-मीरी जुटे हैं। अब किसी एक बात पर विचार करेंगे। आज मानो इन पशुओं की दौरा-अदालत इजलास लगाकर बैठी हो।

धीरे-धीरे दुपहरी हो चली। वे उसी तरह बैठे ही रहे। प्रत्येक के हाथ में तेज़ धारदार तलवारें, तीर-कमान आदि हथियार थे। उधर उनका एक देवधाइ मुरग़ी के दो अंडे लिये हुः हुः—हाः-हाः इत्यादि शब्द उचारता हुआ 'मंगल' मना रहा था।

इतने में बेराङ, केदिङ, तानेङ, लाइपू आदि की अगुआई में एक झुण्ड मीरी पानेइ और जंकी को ले आया और पंचायत के आगे पेश कर दिया। अभागे-अभागिन दोनों थर-थर काँपने लगे। उन्होंने समझ लिया कि आज ये नृशंस उनका कुछ करके ही रहेंगे।

दोनों की कमर में दो रस्सियाँ बँधी थीं। दोनों रस्सियों को एक साथ जोड़ रखा गया था। अर्थात् दोनों एक साथ ही बँधे थे। वे आके 'बारह गाँव' की पंचायत के आगे घुटनों के बल गिर पड़े। बस, पहाड़ी मीरी पंचों के बीच तीन-ढोल तिहत्तर-बोल वाले गुल-गपाड़िया तर्क-वितर्क शुरू हो गए। उनकी बातों के अर्थ हमारे युवक-युवती अच्छी तरह समझ नहीं सके। उस 'बारह गाँवी' के ही एक बूढ़े मीरी ने उन्हें समझाकर पूछा :

"तुम चोर-चोरनी हो कि नहीं हो ?"

जंकी—"कदापि नहीं हैं।"

इस पर उस बूढ़े 'गाम' ने रेबाङ—तेबाङ इत्यादि को बुलाया। वे आके हाज़िर हुए। इस पर उसने उनसे पूछा :

"तुमने इन्हें कहाँ पाया था ?"

रेबाङ—"दोनों को रात में एक-साथ ही अपने घर में पकड़ा।"
बारहगाँवी 'गाम'—"अब चोर-चोरनी, तुम्हें क्या कहना है ?"
जंकी—"साथ रहने का ही यह मतलब तो नहीं होता कि हमने पाप किया हो। छुटपन से ही हम एक ही गाँव के लोग रहे हैं, साथी रहे हैं। इसी कारण, जब दोनों एक-दूसरे से मिले तो बातें कर रहे थे।"
रेवाङ—"तू मेरे घर में आधी रात को बातें करने आया था ?" फिर उसने बारहगाँवी 'गाम' से कहा : "बारही गाम ! इन मुलजिमों को तो सजा देनी ही होगी। इन्होंने (बारही गाम की ओर देखकर) पाप भी किया है और अब बारही गाम के आगे झूठ भी बोल रहे हैं।"
बारही गाम—"ठहरो, तुम लोग और थोड़ी देर ठहरो !"

उस 'थोड़ी देर और' में उनका देवधाइ मुरगी के दो अंडे लेकर हाज़िर हुआ। पर 'बारही गाम' की ओर देखकर उससे कोई बात किये बिना ही इस बार उसने हमारे युवक-युवती की ओर ताका। युवक-युवती को देखकर उस देवधाइ के हृदय में करुणा का उद्रेक हुआ। पर उसी क्षण बेराङ की आँखों से उसकी आँखें चार हुईं। डर के मारे झट सिकुड़कर देवधाइ ने कहा :

"बारही गाम ! ये दोषी हैं। 'मंगल' यही कहता है।"
बारही गाम—"चोर-चोरनी, अब तुम्हें क्या कहना है ?"

इस बार पानेइ या जंकी कोई उत्तर न दे सके। उन्होंने समझ लिया कि इन पिशाचों से उन्हें उचित न्याय-विचार कभी नहीं मिल

सकता। निराश होकर वे चुप साधे ही रह गए। पर फिर भी वे यह नहीं जान पाए थे कि उनके साथ ये लोग क्या करने वाले हैं।

इसके बाद 'बारही गाम' ने जंकी की ओर देखते हुए कहा :

"चोर! तू जो देराङ के घर में घुसकर चोरी कर रहा था, सो क्या तुझमें इतनी ताक़त है कि तू हमारे बारहगाँवी दस्तूर के मुताबिक़ हमारी बारहगाँवी पंचायत को सूअर, मेथोन,[1] दारू, भात आदि दे सके? तू क्या इस चोरनी को 'देओमणि'[2] और 'देओघटी'[3] देकर अपना ले सकेगा?

---

१. 'मेथोन' या 'मेठोन' जंगली कासर (भारतीय 'बाइसन') को कहते हैं, जो अरना भैंसा और याक की जाति का होता है। यह जानवर अब या तो हिमालय के पूरबी भागों के जंगलों में पाया जाता है या लिथुआनिया के जंगलों में। जन्तु-विद्या की पारिभाषिक (लातीनी) शब्दावली में इसे 'गाव्हबेउस गाउरुस' कहते हैं।
—अनु०

२. तिब्बत की ओर से पहाड़ी मीरी और डफले संगमरमर के बड़े-बड़े गहने लाते हैं, जिन्हें वे 'देओमणि' कहते हैं। 'देओमणि' नामक ये गहने बहुत ही क़ीमती माने जाते हैं। —लेखक

३ 'देओघटी' पूजा की घंटी-सी होती है, जो तिब्बत से लाई जाती है। हमारे लिए तो इसका एक रुपया दाम भी अधिक होगा, पर मीरी और डफले इसे बहुत क़ीमती मानते हैं। उनकी निगाहों में 'देओघटी' भी लगभग उतनी ही क़ीमती है, जितनी कि हमारे लिए सोने की बिजायठ। चीज तो देखने में भोंडी-सी होती है, पर ये उसे दो-दो तीन-तीन सौ रुपये देकर मोल लेते हैं। 'देओघटी' के लिए पहाड़ी मीरी-डफलों में बराबर मार-काट लगी रहती है। जिसके पास 'देओघटी' होती है, वह उसे मिट्टी तले गाड़े रखता है, ताकि कोई यह जान न पाये कि उसके पास कितनी हैं।—लेखक

जंकी जानता था कि उसके पास जो भी रुपये-पैसे थे वे मीरियों ने पहले ही निकाल लिये थे। इस समय वह पराये घर में था। सोचा, इतने रुपये पाऊँगा कहाँ से ? जवाब दिया :

"कहाँ पाऊँगा ?"

बारही गाम—"कहाँ पाऊँगा ? नहीं पा सकता तो तू कुत्ते की तरह रेबाङ के घर में चोरी क्यों कर रहा था ?"

जंकी—"चोरी तो मैंने नहीं की। की भी हो, तो अपने मैदानी मानुष की ही की है। रेबाङ के किसी निजी मानुष की नहीं की।"

बारही गाम—"तुम्हारी बारहगामी के देश में तो सारी बातें एक-जैसी होती हैं !"

इसके बाद बारहगाँवी पंचायत ने 'बिबिङ-बाबिङ'-जैसी अनोखी बोली में फिर वही तीन-ढोल-तिहत्तर-बोल वाली गुल-गपाड़िया पंचैती शुरू की। आखिर हुकुम हुआ :

"चोर-चोरनी नें पाप किया है।
इन्हें बड़ी नदी के पार कर देना है।"

बस, क्या था ! उसी क्षण पशु से भी अधम चार नृशंस दया-माया-हीन मीरियों ने पानेइ और जंकी को एक ही साथ खूब कस-कसकर बाँधना शुरू कर दिया।

हतभागा-हतभागी की चीखों-पुकारों से आसमान फट-फट गये। जंकी तो अपना गला आप ही काटने लगा। हाथ जोड़े घुटने टेके 'बारही गाम' से विनती करने लगा :

"मुझे मार डाल 'बारही गाम', मुझे मार डाल ! पर मेरी इस भोली कनेङ को मत मार ! हाय हो, कनेङ ओ, मैं ही तेरा दोषी हुआ ! हाय हो, मेरे कार्टान ओ, रक्षा कर ! 'बारही गाम' मैं ही दोषी हूँ, मेरा वध कर ! बारेगाम, मेरी भोली कनेङ को मत मार ! 'बारही गाम', उसके पेट में संतान है। 'बारही गाम', मैदानों में हमारे दुखों का ओर-छोर न था। 'बारही गाम', यही मेरी घरनी है ! 'बारही गाम', इसे मत मार, मत मार ! 'बारही गाम' यह माँ-बाप को छोड़कर मेरे साथ भाग निकली थी। 'बारही गाम', सोवनशिरी की रेती पर हमने कार्सिङ-कार्टान को साखी बदकर ब्याह कर लिया था। 'बारही गाम' उसके पेट के बालक के वध का भागी मत बन ? 'बारही गाम' हमें मारने से तेरा कोई लाभ न होगा। 'बारही गाम', मेरी इस कनेङ की हत्या के पाप से तू बच नहीं पायगा। 'बारही गाम' इसे छोड़ दे, छोड़ दे !!"

'बारही गाम' का मन न डोला। वह अटल था। जो नृशंस बिना कारण, बिना दोष, नर-हत्या करने से कुण्ठित नहीं होते, जिन नृशंसों का धर्म ही यही है कि एक माथोन या सूअर या 'देओघटी' के लिए झगड़ा उठ खड़ा होने पर रातों-रात चोरों की तरह एक गाँव वाले दूसरे गाँव पर हल्ला बोलकर, उसके वासियों को मार-काटकर, उनके बच्चों और स्त्रियों को बंदी बना लायें, उन्हें जंकी और पानेइ के आर्त्त नाद क्या पिघला सकते थे ?

'बारही गाम' ने जवाब दिया :

"बारही गाम का हुकुम टस से मस नहीं होता।"

इसके बाद दोनों के हाथों में कीलें ठोंककर आठ नर-पिशाच उन्हें घसीट ले गए। राह में जंकी कहने लगा : "पानेइ, तू मेरे लिए

ही माँ-बाप को छोड़ भागी थी, मैं ही तेरा अपराधी हूँ।" इतना कहते ही जंकी की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे। मेरी चुपचुपी भोली मीरी बिटिया की आँखें भी धाराधार बरसने लगीं। हतभागे-हतभारी ने समझ लिया कि थोड़ी ही देर में अब यह सोने का संसार ये आँखें देख नहीं पायँगी। रो-रोकर विलाप करते हुए हमारे इन दहकते कपाल वालों ने गाना शुरू किया :

"डर मत चेनेङ ऐ
रो मत चेनेङ ऐ
ला मत मन में सोग
छोड़ यह नगरिया
चल 'रेगाम' की डगरिया
जहाँ मिटेंगे तमाम दुख-भोग !"

पाठको ! क्षमा करना, अब इसके आगे उस भीषण दृश्य को देखने के लिए मैं पानेङ और जंकी के पीछे-पीछे नहीं जा सकता।

समापनी

फिर सोवनशिरी नदी के वक्षस्थल पर

पानेइ को भागे और जंकी को उसकी खोज में निकले छै माह हो गए। इन छै महीनों में उनका कोई भी समाचार नहीं मिला। पानेइ के माँ-बाप तो पानेइ के शोक में दिन-पर-दिन छीजते सूखकर काँटे बनते गए। निरमा बीच-बीच में मुक्कों-मुक्कों छाती पीट-पीटकर रो-रो पड़ती। एकाध बार बूढ़े तामेद को गालियाँ देने और कोसने का सिलसिला भी जारी रखे रही। उधर कमुद को न तो अपने रुपये-पैसे वापस मिले और न पानेइ ही मिली। उसने तामेद के ऊपर मुकद्दमा दायर कर दिया है। पाठको! चलिये एक बार डालिमी को भी देख आयें। जंकी को लौटते न देखकर वह अब नित-दिन संझा-पहर एक बार घाट पर जाया करती है और सोवनशिरी माई की ओर ताक-ताककर बीच-बीच में एकाध हूक-भरी लंबी उसाँस भर-भर लेती है। इस तरह

दोनों गाँवों में चार प्राणी कष्ट पा रहे हैं।

एक दिन की बात है कि बूढ़ी निरमा सो रही थी। उसने सपने में देखा कि उसकी पानेइ और जंकी दोनों पहले से कहीं अधिक सुघड़-सलोने बने-ठने उम्दा-उम्दा पहनावों में सजे-धजे आगे खड़े हैं। उसने उन्हें हाथ हिला-हिला कर बुलाया। वे किसी पहाड़ के ऊपर एक दूसरे का हाथ धरे घूम रहे थे। निरमा ने दोनों को पुकारा, "मेरे बछरुओ, इधर आओ!"

उन दोनों ने जवाब दिया: "माँ, आ तो नहीं सकते हम। यहाँ से उतर नहीं सकते।" बूढ़ी धाड़ें मार-मारकर रोने लगी। नींद खुल गई। रो-रोकर, आँखें मल-मलकर, देखती क्या है कि पौ फट चली है, रंगीन किरणें दिखाई देने लग पड़ी हैं। काँख तले गगरी दाबे बुढ़िया सोवनशिरी के घाट पर पानी भरने चली। वहाँ जाकर देखती क्या है कि पानी के अंदर क्या तो दो चीज़ें बही जा रही हैं। बुढ़िया पानी लेके लौट आई। मन-ही-मन बहुत बेचैन होकर उसने नदी में बहती चीज़ों की बात तामेंद को बताई। तामेंद गाँव से लोग बटोरकर नदी पर गया। साथ-साथ निरमा भी गई और सोवनशिरी के किनारे का एक अत्यंत ही बूढ़ा सुनार भी गया।

लग्गों-चप्पुओं से उन बहती चीज़ों को कोंच-कोंचकर देखते क्या हैं कि ये तो दो लाशें हैं। किनारे लाकर देखा कि दोनों साथ-साथ बँधी हैं, एक के ऊपर दूसरी डालकर। दोनों के गले में दो बरछे खुभे थे, दोनोंके दोनों हाथों में दो-दो बरछे खुभे थे, एक-एक दोनों की छाती में और एक-एक दोनों की कमर में भी खुभे थे। बूढ़े सुनार ने देखते ही कहा: "यह तो गाछी-मीरियों की कारस्तानी है।" दोनों लाशों को अच्छी तरह उलट-पुलटकर हिला-डुलाकर देखा गया तो पता चला कि लाशें पानेइ और जंकी की हैं। बूढ़ा-बूढ़ी तो पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़े। उन्होंने लाशों को अँकवार करके छाती से चिपका लिया।

और भी जितने लोग वहाँ थे, सभी रो पड़े। रो-रो के आँखों से धार-धार आँसू ढालती रुकमी और भादै उन दोनों के बदन पर फूल छिड़कने लगीं। गाँव के लोग दोनों लाशें उठा ले गए और मीरी रीत-रस्म से सारे क्रिया-कर्म पूरे किये।

और पाठको, डालिमी ? डालिमी ने भी यह समाचार सुना। लोगों की आँखों से ओझल हो-होकर, छिप-छिपकर, सबकी आँखें बचा-बचाकर, वह भी खूब रोई। पानी लाने के बहाने सोवनशिरी के किनारे जा-जाकर वह कभी पानी को, कभी आसमान को, तो कभी मीरी-डफला पर्वत-श्रेणी को ताकती रही।—इस बार उसके हृदय की आशा-लता सचमुच जड़-मूल से उच्छिन्न हो गई थी।

पानेइ और जंकी के प्रणय का विषमय फल फला। बूढ़े तामेद को इस बात की अच्छी सीख मिल गई कि रुपये का लोभ क्या कर डालता है। हमने भी अपनी हतभागिनी मीरी बिटिया की दुखभरी कहानी यहीं समाप्त की। आशा है, इससे मीरी जाति के घर-घर में अब से सुफल ही फलेंगे।